



देवरम्य हिमालय

हंसराज 'दर्शक'







iled floors, the existenc

देवरम्य हिमालय

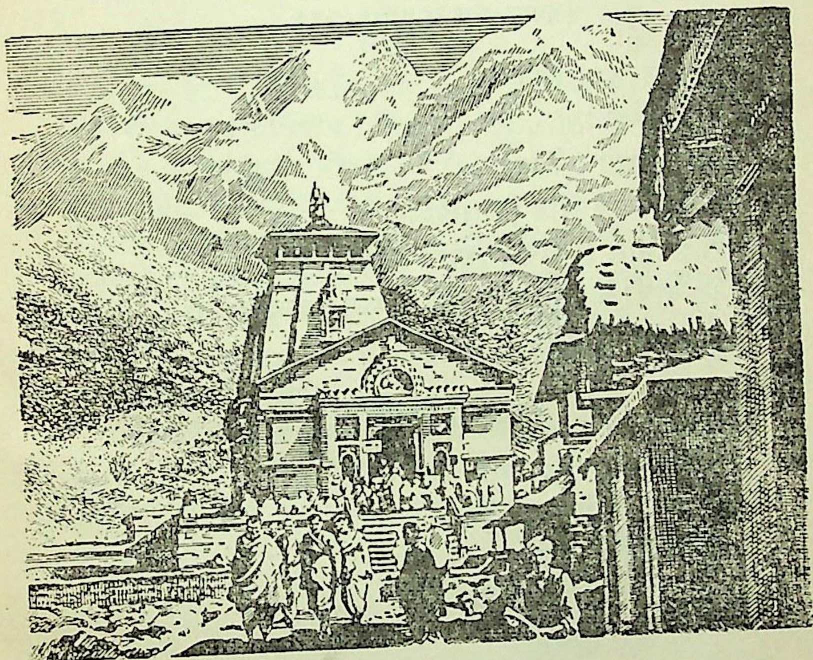
(प्राकृतिक सौन्दर्य तथा साँस्कृतिक धरोहर से ओतप्रोत उत्तराखंड की मुग्धकारी यात्रा का सचित्र वर्णन)

हंसराज 'दर्शक'

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7

प्रकाशक	**सन्मार्ग प्रकाशन** 16, यू० बी० बँग्लो रोड दिल्ली-110007
प्रथम संस्करण	1976
मूल्य	दस रुपये
मुद्रक	**प्रिंट आर्ट,** नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

देवरम्य हिमालय



लेखक की अन्य रचनाएँ

(रचना काल १६५८-१६७५)

१. अमरनाथ दर्शन
२. बर्फ का संसार
३. घाटियों के स्वर
४. जय राजस्थान (बालोपयोगी)
५. विशाल हिमाचल (बालोपयोगी)
६. चाचा के पत्र : नन्ने-मुन्ने के नाम (बालोपयोगी)
७. धरती माँ मुस्काई

आगामी रचनाएं

१. नाना के पत्र : नातिन के नाम
२. काश्मीर से कन्या कुमारी तक
३. जीवन का सफ़र

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'देवरम्य हिमालय' श्री हंसराज 'दर्शक' ने बड़े मनोयोग और परिश्रम से लिखी है। हिमालय प्रदेश के अन्तराल में स्थित एवं प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सांस्कृतिक धरोहर से ओतप्रोत उत्तराखंड का सचित्र वर्णन प्रस्तुत करने में श्री 'दर्शक' जी पूर्णतः सफल हुए हैं। निस्संदेह इन्होंने बड़े ही मार्मिक ढंग से अपनी यात्रा को लिपिबद्ध किया है। मुझे विश्वास है कि साधारण पाठक-वर्ग तथा विद्यार्थी इस पुस्तक को रुचिकर पाएंगे और बैठे-बैठे उत्तराखंड की पूरी झांकी का आनन्द ले पाएंगे। पाठकों के सामान्य ज्ञान-विज्ञान की श्रीवृद्धि में भी यह पुस्तक काफ़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

हिन्दी में अभी पर्यटन-संबंधी साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। इस दिशा में जिन लेखकों और साहित्यकारों का योगदान रहा है, उनमें श्री 'दर्शक' भी नवोदित उत्साही लेखक हैं। सचमुच इनका प्रयास सराहनीय है और ये 'देवरम्य हिमालय' जैसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिये बधाई के पात्र हैं। आशा है, इस पुस्तक का समुचित स्वागत होगा।

—हरवंश लाल शर्मा
अध्यक्ष
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय एवं
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
(शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय)
भारत सरकार

नई दिल्ली
दिनांक 30 अक्तूबर, 1975

दो बातें

'देवरम्य हिमालय' उत्तराखंड सम्बन्धी मेरे तेरह यात्रावृतों का मिला-जुला संग्रह है जो मैंने सन् १९७२ व सन् १९७३ में यात्रा के दिनों में लिखे हैं। साथ ही, पाठकों की अधिक जानकारी हेतु मैंने पुस्तक के अन्त में एक लेख और दो परिशिष्ट भी जोड़ दिए हैं।

प्राचीन परम्परागत हिमालय के समूचे क्षेत्र को नेपाल, कूर्मांचल (कुमाऊं), केदार (गढ़वाल), जालंधर (हिमाचल) और कश्मीर नामक पाँच खंडों में विभक्त किया गया है। इनमें कूर्मांचल और केदार के मिले-जुले खंड को ही उत्तराखंड की संज्ञा दी गई है। देश-विदेश के पर्यटकों की अभी तक यही धारणा चली आ रही है कि कश्मीर ही हिमालय का सबसे मनोरम भू-भाग है जिससे उसे 'धरती का स्वर्ग' कहा जाता है। सच तो यह है कि कश्मीर में हिमालय की नैसर्गिक सुषमा की अपेक्षा बाग-बगीचों, फव्वारों, हाऊस-बोटों आदि के रूप में मानवीय कला के समन्वय की झाँकी अधिक आकर्षक दिखाई देती है और साथ ही वहाँ पर पर्यटकों की सुख-सुविधाओं की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है जिससे कश्मीर सैर-सपाटा, आमोद-प्रमोद तथा सैलानियों के लिए भले ही स्वर्ग हो, पर जो लोग हिमालय में आतमा और परमातमा, पुरुष और प्रकृति तथा शिव और शक्ति का दर्शन करना चाहते हैं उनके लिए तो उत्तराखंड से बढ़कर सुन्दर एवं प्रेरक क्षेत्र और कोई नहीं। बस! उत्तराखंड के कुछ ऐसे ही देवरम्य रूपों ने मुझे प्रेरित किया है इस पुस्तक को लिखने के लिए! मैं नहीं जानता कि मेरी प्रेरणा का सामर्थ मेरा प्रयास कहाँ तक दे पाया है, इसका निर्णय आप करेंगे।

सैक्टर ३/३१५
रामाकृष्णा पुरम
नई दिल्ली—२२

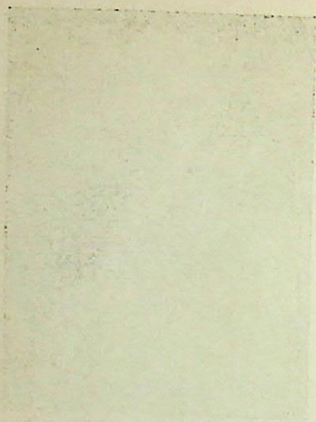
—हंसराज 'दर्शक'



सादर समर्पित है

स्वर्गीय देव-वंदित पिता बालकराम जी को
जिनसे मुझे प्रकृति-प्रेम, मानव-धर्म
व संतोषी-जीवन विरासत में मिला !

—दर्शक



मसूरी में दो सैलानी बच्चे

केदार-बद्री यात्रा में हमारी टोली

नीलकंठ की रजत विशाल शिखरावली

कीर्तिनगर-श्रीनगर का पुल

अनुक्रम

क्रमांक	विषय		पृष्ठ
१.	ऋषिकेश से सोन प्रयाग का सफ़र	...	९
२.	अनुपम घाटी की अपूर्व सुषमा	...	२२
३.	केदारनाथ से हमारा साक्षात्कार !	...	२६
४.	मन्दाकिनी से अलकनन्दा तक	...	३८
५.	प्रकृति की गोद में बसा बदरी विशाल	...	४३
६.	सौम्य परिवेश में इठलाता नन्दन कानन	...	५३
७.	पिन्डारी ग्लेशियर के सुरम्य पथ पर	...	६१
८.	झीलों की धरती कूर्मांचल	...	६७
९.	इस देश में गंगा बहती है	...	७६
१०.	सुन्दरता की खान जमनोत्री	...	८५
११.	देहरा घाटी ने हमें पुकारा !	...	९०
१२.	बर्फ से ढकी हिमरानी मसूरी	...	१००
१३.	पौड़ी-गढ़वाल का यात्रा-आनन्द	...	१०५
१४.	हिमालय की रंगस्थली उत्तराखंड	...	११५
	परिशिष्ट	...	१३१

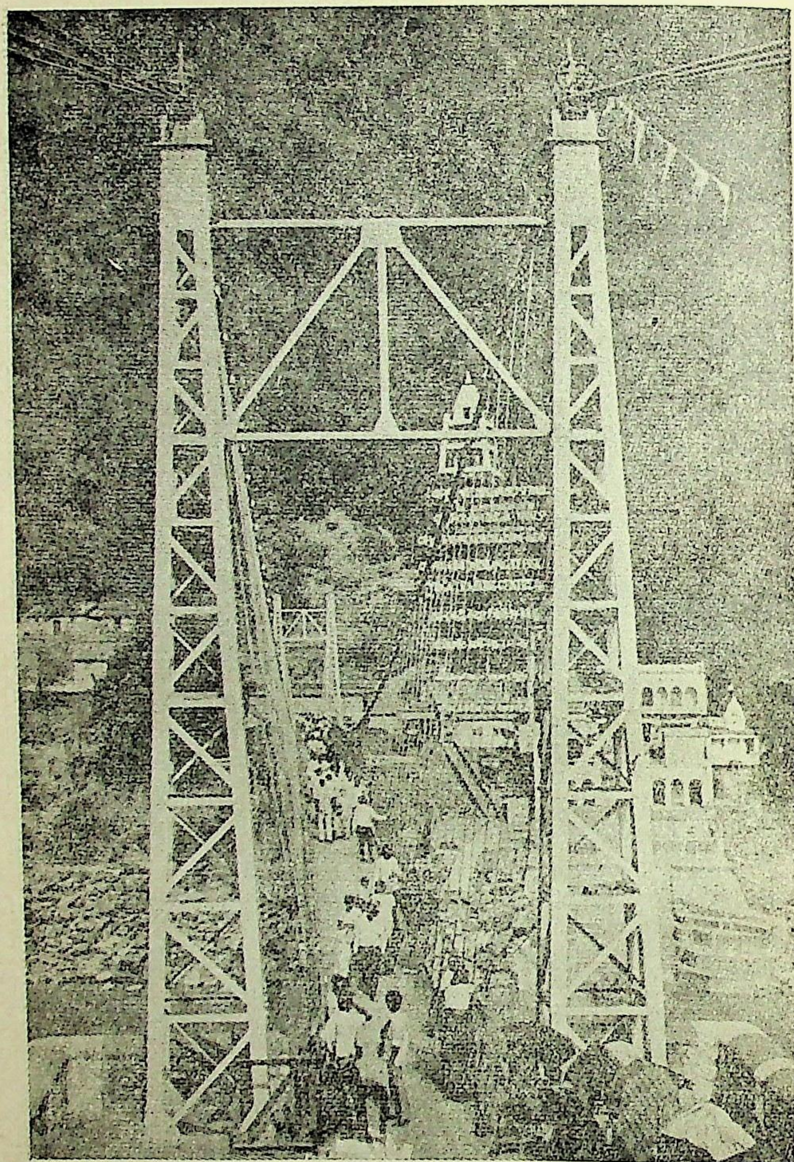
○

अलकापुरी मार्ग में बर्फ का पुल

बद्रीनाथ पुरी

सहस्त्रधारा में गन्धक का सोता

हरद्वार में हर की पौड़ी



लक्ष्मण झूला

जमनोत्री मार्ग में देवदार के झुरमुट

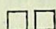
व्यास गुफा का बाहरी भाग

माणा की दो मारछा महिलाएँ

केदार घाटी में लेखक

१

ऋषिकेश से सोन प्रयाग का सफ़र



भारत की राजधानी दिल्ली से कोई पाँच सौ किलोमीटर दूर, दिव्यज्योति से ओतप्रोत गढ़वाल-हिमालय की सबसे मन-मोहक घाटी है—केदारनाथ ! अतएव इसकी गणना उत्तराखंड के चारों धामों में से सबसे बड़े धाम में की जाती है। बाकी के तीन धाम बद्रीनाथ, गंगोत्री व जमनोत्री हैं। वस्तुत: ये चारों पुण्यधाम क्रमश: मन्दाकिनी, अलकनन्दा, भागीरथी और यमुना जैसी हमारे देश की महान् नदियों के उद्‌गमतीर्थ हैं। इससे पता चलता है कि हमारे पूर्वजों एवं संस्कृति-निर्माताओं की सूझबूझ कमाल की थी। उनकी महानता का एक प्रमाण इन दिव्यस्थलों के तीर्थाटन से मिलता है जिनमें राष्ट्रीय एकात्मकता के साथ-साथ तीर्थयात्री का मन प्रकृति के अलौकिक आनन्द को पाकर परम चैतन्य की ओर उन्मुख हो उठता है।

वैसे हमारे यहाँ तीन तरह के तीर्थ माने गए हैं—स्थावर, जंगम और मानस। स्थावर तीर्थों में प्राकृतिक वैभव की प्रधानता होती है। गंगा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी आदि नदियाँ, मानसरोवर आदि सरोवर, मायापुर (हरद्वार), अयोध्या, मथुरा, काशी, कांची, अंवितका, (उज्जैन) आदि पुरियां सभी स्थावर तीर्थ हैं। इसी प्रकार अनेक विद्वान-पंडित, साधु-संत, तपस्वी-महात्मा ऐसे जंगम तीर्थ हैं जो निरन्तर चलते-फिरते लोक-कल्याण करते रहते हैं। सत्य-अहिंसा, सेवा-दान, दया-प्रेम आदि मानस तीर्थ की श्रेणी में

आते हैं । अतः स्थावर तीर्थों पर जाने से यात्री को स्वतः जंगम और मानस तीर्थों का भी लाभ प्राप्त होता है ।

केदारनाथ हमारे देश का शिरोमणि तीर्थ है । इसका उल्लेख हमारे ग्रन्थों में विशेषतः स्कन्द पुराण के केदारखंड में विस्तार से किया गया है । महाभारत युद्ध के पश्चात् पाँडवों के स्वर्गारोहण महापंथ का आरम्भ भी यहीं से हुआ था । कहते हैं कि वशिष्ठ मुनि ने अपने हिमालय-प्रवास में केदार की ६१ यात्राएँ की थीं । सातवीं-आठवीं शती में तीर्थाटन की इस स्वस्थ एवं पावन परम्परा का मार्ग-दर्शन करने के लिए सब से पहले आदि गुरु शंकराचार्य जी ने ही केदारनाथ में शिव के भव्य एवं कलापूर्ण मंदिर का निर्माण करवाया जिसके दर्शनार्थ हर वर्ष लाखों लोग देश के कोने-कोने से यहाँ आते हैं ।

केदारनाथ से साक्षात्कार करने की मेरी लालसा सन् १९५८ में कश्मीर के दिव्यस्थल अमरनाथ के दर्शन से ही मेरे अन्तर हृदय में रह-रह कर पनप रही थी, परन्तु इसका संयोग मुझे लगभग पन्द्रह बर्षों के बाद सन् १९७२ में उस समाचार को पढ़कर मिला जिसमें लिखा था—"केदारनाथ के कपाट इस बार १५ मई को खुल रहे हैं और पर्यटन विभाग ने उत्तर प्रदेश पर्वतीय निगम की सहायता से केदारनाथ के ज्योतिदर्शन करने वाले यात्रियों के लिए यातायात आदि की विशेष व्यवस्था की है ।"

इस प्रकार दो दिन तक सफ़र का आवश्यक प्रबन्ध करके १७ मई की प्रातः को हम यू०पी० रोडवेज़ की एक मेल बस में सवार होकर दिल्ली से ऋषिकेश पहुँचे । वहां जाकर तुरन्त ही हमने अपने नाम केदारनाथ जाने के लिए यातायात कार्यालय में लिखवा दिए । परन्तु पूछताछ करने पर पता चला कि इस वर्ष भी गत वर्षों की भांति उत्तराखंड के चारों धामों में जाने

वाले तीर्थयात्रियों और पर्यटकों की संख्या काफी अधिक है जिससे हमें अभी तीन-चार दिन और यहीं रुकना होगा।

ऋषिकेश

समुद्र के तल से ३३६ मीटर की ऊँचाई पर ऋषिकेश या हृषीकेश–केदारनाथ, बद्रीनाथ, हेमकुंड, नन्दन कानन, जमनोत्री, गोमुख आदि देवरम्य स्थानों को जाते-आते पड़ाव के लिए एक अत्युत्तम स्थान है। भगवती गंगा के दाएं तट पर बसा यह स्थल आज पूर्वी देहरादून जिले का सबसे प्रमुख नगर है जो वर्तमान शताब्दी के शुरू में एक छोटा-सा गाँव था। आध्यात्मिक शांति की खोज के लिए भी यहाँ पर हर वर्ष हजारों विदेशी आते हैं। अतएव इस जगह को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। इसके साथ ही, देश की स्वाधीनता के बाद ऋषिकेश में औषधियां बनाने के लिए एक कारखाना भी लगाया गया है। कहते हैं कि भरत जी ने यहाँ पर तपस्या की थी जिसका एक प्राचीन मंदिर भी है। ऋषिकेश में यद्यपि निवास के लिए हमारे पास पर्याप्त जगह उपलब्ध थी फिर भी केदारनाथ के प्रस्थान से पूर्व हम स्वर्गाश्रम के परमार्थ निकेतन में रहे, जहाँ पर निवास, भोजन तथा स्नान आदि का हर प्रकार से समुचित प्रबन्ध था।

स्वर्गाश्रम

प्रकृति-प्रेमी और धर्म-परायण लोगों के लिए स्वर्गाश्रम सचमुच ही एक आदर्श स्थली है। यह जगह ऋषिकेश से तीन किलोमीटर दूर, गंगा के बाएं तट पर अवस्थित है। अनादि काल से उत्तराखंड की तपोभूमि ऋषि-महर्षि, साधु-महात्माओं से सेवित

और पूजित रही है। प्राचीन काल में यह क्षेत्र जहाँ अब ज्वालापुर, कनखल, हरिद्वार, ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम और लक्ष्मण झूला हैं 'मायापुर' के नाम से प्रख्यात था।

स्वर्गाश्रम में गंगा के तट पर अनेक नये-पुराने भवन, मंदिर, धर्मशालाएँ तथा साधु-सन्यासियों की कुटियाँ बनी हुई हैं। यहाँ पर जहां एक ओर खास स्वर्गाश्रम की इमारतें पुरानी हैं वहाँ दूसरी ओर गीता भवन व परमार्थ निकेतन के भवन आधुनिक वास्तुकला के अद्‌भुत नमूने हैं। गीता भवन में रामचरित मानस के चुने हुए अंश, श्रीमद् भगवद्‌गीता के अठारह अध्याय तथा संतों के सुन्दर वचन संगमरमर की दीवारों पर अंकित हैं। इसी प्रकार परमार्थ निकेतन में छोटे-छोटे काँच के अनेक मंदिर बने हुए हैं जिनमें देवी-देवताओं की रंगीन कलात्मक मूर्तियाँ शोभायमान हैं। इनकी ओर देखने से ऐसा लगता है जैसे ये बोल रही हैं और अपने-अपने युग की कथा सुना रही हैं। अनूठी वास्तुकला के अतिरिक्त इन दोनों भवनों की विशेषता यह है कि इनमें हर वर्ग के यात्रियों के लिए छोटे-बड़े सैकड़ों कमरे बने हुए हैं जिनमें हजारों लोग हर रोज दूर-दूर से आकर यहाँ निःशुल्क ठहरते हैं। यों तो यहाँ पर बारह महीने यात्री आते ही रहते हैं, किन्तु चैत्र से आषाढ़ तक प्रतिवर्ष सत्संग की विशेष व्यवस्था रहती है। सैकड़ों सत्संगी भाई-बहन इनसे लाभ उठाते हैं।

लक्ष्मण झूला

पुण्य सलिला के एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाने के लिए यदि एक ओर गीता भवन ट्रस्ट की ओर से चार-पाँच मोटर लाँचों का निःशुल्क प्रबन्ध है तो दूसरी ओर स्वर्गाश्रम के निकट ही लक्ष्मण झूला पुल का नज़ारा भी देखते ही बनता है।

यह पुल अपने ढंग का अनोखा है। इसी तरह का एक और पुल आगे चलकर देव प्रयाग में भी है। अन्य पुलों की भांति लक्ष्मण झूला का यह पुल ईंटों या पत्थरों के विशाल स्तम्भों पर स्थित नहीं, बल्कि लोहे की रस्सियों का बना हुआ है जो गंगा पर लटका हुआ प्रतीत होता है। इसको देखकर ऐसा लगता है मानो दो शैलखंडों का पारस्परिक सन्देश ले जाने वाला कोई तार लगा हो।

आज से कोई पचास वर्ष पूर्व यही झूला पुल लोहे के तारों के स्थान पर घास की रस्सियों का बना हुआ था। अधिक बोझ के कारण कई यात्रियों का अंत हो जाया करता था। ऐसा कहा जाता है कि लक्ष्मण जी ने लंका युद्ध के पश्चात् ब्रह्महत्या का दोष निवारण करने के लिए यहाँ पर शिव-पूजन किया था।

सफ़र पर प्रस्थान

स्वर्गाश्रम में चार दिन व्यतीतकर हम २१ मई को मध्याह्न एक बजे के करीब ऋषिकेश से गढ़वाल रोडवेज की एक छोटी बस में बैठकर केदारनाथ की ओर सोन प्रयाग के लिए रवाना हुए। बस की सीटें आरामदेह थीं और कुल यात्री पैंतालीस। हम बस की अगली सीटों में थे जिससे बाहर के दृश्य हमें साफ दिखाई दे रहे थे। सड़क का पहला मोड़ आते ही हमारे सामने गंगा के दूसरी ओर योगियों की तरह समाधिस्थ स्वर्गाश्रम के पंक्तिबद्ध देव-मंदिरों और गंगा पर लटके हुए लक्ष्मण झूला पुल के मनोहारी दृश्य हमें एक बार फिर देखने को मिले, जिसको देखते ही हमारा हर्षोल्लास उमड़ पड़ा 'जय मात गंगे', 'गंगा मैया की जय' के जयकारों में। यहाँ पर भगवती गंगा हिमालय के गर्वोन्नत शिखरों, विशाल चट्टानों तथा बीहड़ जँगलों को छोड़ कर सबसे

पहले मैदान में उतर कर हमें ऐसी स्वर्गिक छटा प्रदान करती है जो आत्मा की गहराइयों को छूकर परम आनन्द में लीन कर देती है।

शैल-शिखरों का दुर्ग

लक्ष्मण झूले से आगे बढ़ते ही हमारे सामने था—उत्तराखंड के शैल-शिखरों का भव्य दुर्ग। एक पर्वत के सिर पर अथवा उसकी पीठ पर उससे भी ऊँचा और हरा-भरा दूसरा पर्वत खड़ा था और नीचे खाई में गौरवशाली गंगा सृष्टा और प्रकृति के गीत गाती, अठखेलियाँ करती तथा लोक-कल्याण के लिए उत्सुक पर्वतों से मैदानों की ओर दौड़ती चली जा रही थी उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल की सीमाओं को लांघती हुई गंगा सागर की विशाल भुजाओं में विलीन होने के लिए।

ऋषिकेश से सोन प्रयाग का सारा राजमार्ग ऊँचा-नीचा, टेढ़ा-मेढ़ा और सर्प की तरह बलखाता हुआ दूर तक चला गया है। इसके हर मोड़ पर गंगा का महान नज़ारा अपना अद्‌भुत एवं नवीन आकर्षण उपस्थित करता है जिसको देखने के लिए बार-बार मेरा मन रुकने को चाहता था। पर वहाँ तो गंगा के रूप, रंग और माधुर्य की कोई सीमा ही न थी। भला उसे कोई कैसे बाँध सकता था?

गंगा की महिमा

गंगा की महिमा अनादि काल से गौरवमयी रही है। उसकी पावन गोद में न जाने कितनी जातियों-उपजातियों का लालन-पालन हुआ। इसके नाम से मुझे याद हो आई राष्ट्र-नायक

पंडित जवाहर लाल जी नेहरू की वसीयत के उस अंश की जिसमें उन्होंने गंगा की महिमा का उल्लेख कितने सत्यं-शिवं-सुन्दरम् शब्दों में किया है जो इस प्रकार है—

"मुझे बचपन से गंगा और यमुना से लगाव रहा है और जैसे-जैसे मैं बड़ा हुआ यह लगाव भी बढ़ता रहा। मैंने मौसमों के बदलने के साथ इसके बदलते हुए रंग और रूप को देखा है और कई बार मुझे याद आई उस इतिहास की, उन परम्पराओं की, पुराणिक कथाओं की, उन गीतों और कहानियों की, जो कई युगों से उनके साथ जुड़ गई हैं और उसके बदलते हुए पानी में घुल-मिल गई हैं। गंगा तो विशेष कर भारत की नदी है। यह जनता को प्रिय है जिससे लिपटी हुई हैं भारत की जातीय स्मृतियाँ, उसकी आशाएँ और उसके भय, उसके विजय-गान, उसकी विजय और पराजय। गंगा तो प्राचीन सभ्यता की प्रतीक रही है, सदा बदलती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा। वह मुझे याद दिलाती है हिमालय की बर्फ से ढकी चोटियों की और गहरी घाटियों की जिनसे मुझे मुहब्बत रही है। उसके नीचे के उपजाऊ और दूर-दूर तक फैले मैदानों की जहां काम करते मेरी जिन्दगी गुजरी है।"

"मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्काते, उछलते-कूदते देखा है और शाम के साए में उदास, काली-सी चादर ओढ़े भेद-भरी-सी जाड़ों में सिमटी-सी आहिस्ता-आहिस्ता बहती सुन्दर धारा और बरसात में दहाड़ती, गरजती हुई समुद्र की तरह सीना लिए हुए और सागर को बरबाद करने की शक्ति लिये हुए, यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की जो बहती है वर्तमान तक और बहती चली जा रही है भविष्य की ओर।"

देव प्रयाग

ऋषिकेश से पुण्यतीय गंगा के साथ-साथ चलते हुए हम बस में बैठे-बैठे और मोड़ों पर हिचकोले खाते हुए शाम के चार बजे तक देव प्रयाग आ गए। यह स्थान ऋषिकेश से ७० किलोमीटर दूर है और समुद्र की सतह से ५१० मीटर ऊँचा। यहाँ का आकर्षण अलकनन्दा और भागीरथी नदियों का पुण्यसंगम है जिससे इस विशाल नदी को 'गंगा' की महान संज्ञा दी गई है। अलकनन्दा बद्रीनाथ से आती है और भागीरथी गंगोत्री से जिसके सुमिलन का दृश्य सचमुच ही यहाँ पर बड़ा विस्मयकारी लगता है। खास संगम पर गंगा की उत्ताल तरंगें—कितनी गहन, कितनी अधिक और कितनी अगाध !

देव प्रयाग में एक छोटा-सा बाजार और रात्रि-विश्राम के लिए एक सुन्दर विश्रामगृह है। स्कन्द पुराण के केदारखंड में इसका महात्म्य वर्णन करते हुए लिखा गया है कि यहाँ पर द्वापर युग में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण ने श्रीराम की पूजा की थी जिससे प्रसन्न होकर लंका युद्ध के पश्चात् श्रीराम जो यहाँ आए थे। यहाँ पर रघुनाथ जी का एक प्राचीन मंदिर भी है।

श्रीनगर

देव प्रयाग से चलकर हमारी बस भागीरथी के पुल से होकर अलकनन्दा के किनारे-किनारे कीर्तिनगर से होती हुई कुछ देर के लिए श्रीनगर में रुकी। यहाँ की ऊँचाई ५४० मीटर है और यह नगर गढ़वाल मंडल का सबसे प्रमुख नगर माना जाता है। यहां से पौढ़ी-गढ़वाल तथा टिहरी-गढ़वाल को भी अलग-अलग मार्ग जाते हैं।

श्रीनगर किसी समय बड़ा समृद्ध था। महाभारत के वन पर्व के अनुसार जब पांडव गंधमादन पर्वत (बद्रीकाश्रम) में गए थे तब वे कुछ समय के लिए मार्ग में राजा सुबाहु की राजधानी में अतिथि के रूप में रहे। राजा सुबाहु किरात, भील आदि पिछड़ी जाति के लोगों का राजा था। उसकी राजधानी श्रीनगर ही थी जिसका नाम उस समय श्रीपुर था। केदारखंड में यह क्षेत्र श्रीक्षेत्र के नाम से वर्णित है। महाराज नारद को खुश करने के लिए शीलनिधि राजा ने पहले-पहले जिस श्रीपुर को बसाया था, वह यही श्रीनगर है। कहते हैं कि श्रीराम भी देव प्रयाग से होकर श्रीक्षेत्र आए थे और यहाँ के कमलेश्वर स्थान में उन्होंने शिव-पूजन के रूप में सहस्त्रों कमल अर्पित किए थे। यद्यपि श्रीराम का इससे आगे जाने का उल्लेख अनुश्रुति में नहीं मिलता फिर इस मार्ग में स्थित दशरथ डाँडा, सीतावन (सीतोनस्यूं) और बालमीकिश्वर स्थान अवश्य उल्लेखनीय हैं। सीता वन के फलस्वाड़ी गाँव मे कार्तिक द्वादशी को हर वर्ष एक मेला लगता है जिसमें सीताजी की पृथ्वी-प्रवेश की स्मृति आज भी सुरक्षित है।

श्रीनगर समूचे गढ़वाल की राजधानी भी रही है। इसमें कभी अलकनन्दा के मध्य में एक विशाल चट्टान पर श्रीयन्त्र भी स्थापित किया गया था जिससे यह नगर कभी श्रीपुर और कभी श्रीक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध रहा है। कुछ लोगों का विश्वास है कि श्रीयन्त्र अब भी अलकनन्दा में उलटा पड़ा है जिसके कारण ही यह नगर श्रीहीन हुआ। इस दिशा में श्रीनगर की कीर्ति को पुनः लाने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने अब यहाँ पर गढ़वाल विश्वविद्यालय की स्थापना की है।

वस्तुतः श्रीनगर गढ़वाल की एक हरी-भरी रमणीय घाटी है जिसमें जगह-जगह छोटे-छोटे सीढ़ी की तरह उठते खेत

देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं। साथ ही, यहाँ पर धनुषाकार में बहती अलकनन्दा की माधुर्य रूपछटा देखते ही बनती है। कीर्ति-नगर और श्रीनगर के बीच अलकनन्दा पर एक मजबूत-सा लोहे का पुल भी है। श्रीनगर के बाद हमारी बस सन्ध्या समय तक रुद्र प्रयाग में आकर खड़ी हो गई।

रुद्र प्रयाग

६०० मीटर की ऊँचाई पर स्थित देव प्रयाग से लगभग ७० किलोमीटर दूर, रुद्र प्रयाग केदारनाथ-बद्रीनाथ राजमार्ग का एक प्रमुख पड़ाव है। देव प्रयाग की भाँति रुद्र प्रयाग भी उत्तरा-खंड का एक बड़ा प्रयाग माना जाता है। जानते हो, प्रयाग दो नदियों के मेल को ही कहते हैं। जिस प्रकार देव प्रयाग में भागीरथी और अलकनन्दा का संगम होता है वैसे ही यहां पर अलकनन्दा और मन्दाकिनी का मेल होता है। परन्तु रुद्र प्रयाग की अपनी अलग विशेषता है। यह समतल भूमि पर नहीं बल्कि प्रपात के रूप में झरते मन्दाकिनी के नील नीर को यहाँ प्रखर प्रवाह से बहती अलकनन्दा अपने में विलीन कर लेती है। संगम के समीप ही रुद्रनाथ जी का मंदिर है। कहते हैं कि यहाँ पर नारद जी ने संगीत शास्त्र का पूर्ण रहस्य जानने के लिए शिव जी की उपासना की थी जिन्होंने प्रसन्न होकर नारद जी को संगीत शास्त्र का पूर्ण ज्ञान समझाया था। इस कथा का कुछ भी सार हो, पर कला-प्रेमियों के लिए तो यहाँ मन्दा-किनी का मन्द-मन्द कलरव किसी काव्य एवं संगीत का-सा आभास देता है।

रुद्र प्रयाग में एक छोटा-सा बाजार और रात बिताने के लिए एक बड़ी-सी धर्मशाला के अतिरिक्त दो-तीन होटल भी हैं।

दर असल रुद्र प्रयाग आकर केदारनाथ और बद्रीनाथ को जाने तथा वहाँ से लौटने वाले सभी यात्री कुछ देर के लिए अवश्य ही रूकते हैं। अत: रुद्र प्रयाग यदि एक ओर अलकनन्दा और मन्दाकिनी का संगमस्थल है तो दूसरी ओर केदारनाथ व बद्रीनाथ के तीर्थयात्रियों का मिलनस्थान भी।

मन्दाकिनी के साथ-साथ

रुद्र प्रयाग से आगे दो सड़क-मार्ग हैं जिसमें एक मार्ग अलकनन्दा के किनारे-किनारे बद्रीनाथ को चला जाता है और दूसरा मन्दाकिनी के साथ-साथ सोन प्रयाग को, जहाँ से आगे का सफ़र हमें पैदल तय करना था। रात रुद्र प्रयाग के एक होटल में बिताकर अगले दिन अर्थात् २२ मई को भोर फटने से पूर्व ही हम बस में बैठकर मन्दाकिनी के साथ-साथ सोन प्रयाग की ओर चल दिए।

पर्वतीय भोर बड़ा सुहावना होता है। उस मधुर वेला में मन्द-सुगन्ध-शीतल वायु के झोंकों का रसास्वादन हम बस में बैठे-बैठे ही कर रहे थे। हमारे देखते-देखते पहाड़ों की चोटियों पर सुनहरी रवि-रश्मियाँ अठखेलियाँ करने लगीं और नीचे घाटियों में उजाला बढ़ने लगा। सचमुच, मन्दाकिनी का रूप-रंग अलकनन्दा की तुलना में कहीं अधिक उज्जवल और मनमोहक था जो सुबह के सुहावने समय में हमें खूब लुभा रहा था। सम्भवत: इसीलिए मन्दाकिनी अलकनन्दा की सहायक नदी होते हुए भी परम्परा में अधिक चर्चित रही है। प्रकृति के महान् कवि कालिदास ने इसका उल्लेख अपने सभी ग्रन्थों में किया है जिसमें विक्रमोर्वशीयम् और मेघदूत की मन्दाकिनी निश्चय ही उत्तराखंड की मन्दाकिनी है। महाकवि ने इसके तट पर विद्याधरों के बच्चों

को स्वर्ण-सिकता में क्रीड़ा करते हुए दिखाया है।

रुद्र प्रयाग से मन्दाकिनी के साथ-साथ निरन्तर चलते हुए जगह-जगह सहस्त्रों पत्थर-चट्टानों से टकराती हुई इसकी चाँदी-जैसी फेनिल धाराओं को देखकर अनेक बार मन में आया—काश ! बस में मैं अकेला ही बैठा होता। जहाँ चाहता बस को रुकवा कर वहाँ खड़ा हो जाता और जी भर कर इसका सुमधुर नाद सुनता। पर वहाँ तो मन्दाकिनी की मनोमुग्धकारी रूपछवि हमारे नेत्रों के सामने से चलचित्र की भाँति गुजर रही थी जिसमें मेरे जैसा प्रकृतिदर्शक भला कहाँ-कहाँ समा सकता था ? इस प्रकार रुद्र प्रयाग के बाद अगस्तमुनि, चन्दापुरी, कुंडचट्टी होते हुए हम मन्दाकिनी के पुल को पार कर प्रातः नौ बजे के लगभग पर्वतांचल में स्थित गुप्तकाशी पहुँच गए।

गुप्तकाशी

गुप्तकाशी गढ़वाल की एक प्राचीन नगरी है। केदारखंड में वर्णित इसका नाम 'गुह्य वाराणसी' है और महात्म्य वही है जो उत्तरकाशी और वाराणसी (काशी) का है। गुप्तकाशी से केदारनाथ लगभग ५० किलोमीटर दूर रह जाता है। यहाँ की ऊँचाई १,४५५ मीटर है और पहाड़ों की गोद में बसे होने के कारण इसकी बस्ती देखने में बड़ी सुन्दर लगती है। अतः जलवायु और तीर्थ की दृष्टि से गुप्तकाशी केदारनाथ मार्ग का सबसे सुन्दर स्थान है। यहाँ के दर्शनीय स्थानों में विश्वनाथ मंदिर, मणिकर्णिका कुंड तथा अर्द्धनारीश्वर मंदिर हैं।

यहाँ से दूसरी ओर मन्दाकिनी के दाएं तट पर उखीमठ का प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ पर शीतकाल में केदारनाथ की पूजा होती है। पूर्वकाल में बाणासुर की पुत्री उषा और कृष्ण के पौत्र अनि-

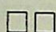
रुद्ध का निवास स्थान होने के कारण इस स्थान का नाम 'उषीमठ' पड़ा जो कालान्तर में बिगड़ कर उखीमठ हो गया वाणासुर उस समय शोणितपुर का राजा था जो कुंडचट्टी के समीप ही है।

गुप्तकाशी से आगे का मार्ग बीहड़ है जो ऋषिकेश-सोन प्रयाग मार्ग का सबसे कठिनतम् भाग समझा जाता है। इस मार्ग में यदि एक ओर देव-से ऊँचे शिखर खड़े हैं तो दूसरी तरफ दानव-से गहरे खड्ड। बस की खिड़की से जब कभी हम नीचे की ओर दृष्टिपात करते थे तो ऐसा लगता था, मानो हम वायुयान में बैठे-बैठे वनस्पतिहीन, नीरस धरती का विहंगम दृश्य देख रहे हैं। हरियाली का तो वहाँ कहीं नामोनिशान न था। यहाँ के पर्वत पेड़-पौधों की जगह मिट्टी और बजरी से भरे पड़े थे जिससे बसों के आते-जाते धूल उड़ती रहती थी और सारा वातावरण दूषित हो जाता था। इस प्रकार गुप्तकाशी से नाला चट्टी, फाटा होते हुए हम एक बार फिर पर्वत के नीचे उतरने लगे और रामपुर की हरी-भरी रमणीय बस्ती में आ पहुँचे।

हमारे देश में कई रामपुर हैं जिससे इस स्थान के साथ 'चमोली' जिले का नाम जोड़ दिया गया है। गुप्तकाशी की तरह रामपुर की बस्ती भी देखने में बड़ी सुन्दर लगती है। यहीं पर सब से पहली बार केदारनाथ के हिमशिखर दिखाई देते हैं। इससे आगे का मार्ग उतार-ही-उतार का है जिसपर बार-बार चक्कर काटती हुई हमारी बस पर्वत की तलहटी में उतर कर ग्यारह बजे के लगभग सोन प्रयाग की अनुपम घाटी में खड़ी हो गई।

२

अनुपम घाटी की अपूर्व सुषमा



सोन प्रयाग (सोमद्वार) पर बस-मार्ग समाप्त और आगे का सफ़र पैदल जो अब गौरीकुंड से आरम्भ होता है। सोन प्रयाग से केदारनाथ लगभग १९ किलोमीटर दूर है। किसी कारणवश जो लोग पैदल चलना नहीं चाहते तो वे फिर यहीं से टट्टू, डांडी अथवा कांडी का प्रयोग करते हैं। डांडी एक नावाकार पालकी होती है जिसमें दो-तीन व्यक्ति बैठ सकते हैं। इसको सात-आठ कुली अपने-अपने कंधों पर उठाकर पहाड़ों पर चढ़ते-उतरते हैं। इसी तरह कांडी भी एक कुर्सी-नुमा टोकरी होती है जिसमें एक ही बालक अथवा व्यक्ति बैठ सकता है। इसे पहाड़ी कुली अपनी पीठ पर बांधकर चलता है।

वस्तुतः सोन प्रयाग एक अनुपम घाटी है जिसकी अपूर्व सुषमा देखते ही बनती है। इस घाटी का घेरा एक किलोमीटर के लगभग होगा और अन्त में प्रहरी की तरह तीन सौ मीटर से भी ऊँचे भीमकाय पर्वत खड़े हैं जिससे इस स्थली को 'सोमद्वार' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यहीं पर मन्दाकिनी और सोन गंगा (वासुकी गंगा) का संगम होता है। इस प्रकार सोनप्रयाग, केदारनाथ मार्ग का तीसरा और अंतिम प्रयाग है। खास संगम पर प्रपात के रूप में झरती मन्दाकिनी की दुधिया धारा में सोन गंगा के हरे रंग के मिलन से एक नया ही रंग मन को लुभा लेता है। संगम के निकट ही सोन गंगा पर एक लम्बा-

सा लोहे का पुल है। यहाँ खड़े होकर इठलाकर चलती मन्दाकिनी और मन्थर गति से बहती सोन गंगा को परस्पर आलिंगनबद्ध होते देखकर ऐसा लगता है मानो ढोल-ढमाकों के मधुर नाद में केदारनाथ की दोनों पुत्रियों का पारिस्परिक मिलन हो रहा हो। वैसे भी इन दोनों नदियों का उद्भव केदार घाटी से ही होता है।

त्रियुगी नारायण

सोन प्रयाग से दो मार्ग जाते हैं जिसमें एक मार्ग मन्दाकिनी के साथ-साथ केदारनाथ को चला जाता है और दूसरा सोन गंगा के दाएं तट से होकर त्रियुगी नारायण को। त्रियुगी नारायण सोन प्रयाग से केवल पाँच किलोमीटर दूर है और समुद्र की सतह से २,७०० मीटर ऊँचा जिससे यह सारा का सारा मार्ग निरन्तर चढ़ाई का है। परन्तु जो लोग इस दुर्गम चढ़ाई के जोखिम उठाने से बचना चाहते हैं, उन्हें रामपुर पर ही उतर जाना चाहिए त्रियुगी नारायण के बारे में कहा जाता है कि शिव-पार्वती के विवाह का यही स्थान है। यहाँ पर एक मंदिर भी है जहां नारायण जी की नाभि से जल निकलकर बाहर कुंड में गिरता है। आगे पार्वती के विवाह काल की अग्नि प्रज्वलित हो रही है जिसमें यात्रीगण हवन-आदि करते हैं। यहाँ पर ब्रह्मकुंड, रुद्रकुंड और सरस्वतीकुंड हैं जिसमें लोग स्नान और तर्पण-आदि करते हैं। इसके साथ ही, यहाँ पर चारों ओर दूर-दूर तक फैली-बिखरी हिमालय की अनुपम शोभा को देख कर प्रकृति-प्रेमी दर्शक का मन लहरा उठता है।

घाटी में चहल-पहल

सोन प्रयाग घाटी की कोई विशेष आबादी नहीं, एक-दो हज़ार के करीब होगी। किन्तु यात्रा के महीनों में यहाँ पर बड़ी चहल-पहल और रौनक रहती है। नित्य नए-नए सैकड़ों यात्री हर रोज केदारनाथ से आते-जाते हैं। इस मौके पर घाटी में घास-फूस की और टीन के छप्परों वाली कई नई दुकानें लगाई जाती हैं जिससे यहाँ पर यात्रा की सभी आवश्यक चीजें उपलब्ध हो जाती हैं—जैसे पैदल चलने के लिए कैनवस के बूट और बल्लम सहित बांस की लम्बी-लम्बी छड़ियाँ, वर्षा से बचने के लिए प्लास्टिक के रूमाल, खाने के लिए सूखा मेवा और बिस्कुट आदि तथा सामान उठाने के लिए कुली व वाहन के लिए टट्टू, डांडी और कांडी।

सोन प्रयाग में यद्यपि सरकार की ओर से रात्रि-विश्राम तथा यात्रियों का फालतू सामान रखने के लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है फिर भी यहाँ के कुछ स्थानीय दुकानदार अपनी-अपनी दुकानों पर तीर्थयात्रियों का सामान उचित दर पर रख लेते हैं और रात को उन्हें अपने पास ठहरा भी लेते हैं। यही प्रबन्ध आगे चलकर केदारनाथ मार्ग के सभी पड़ावों अर्थात् चट्टियों में देखने को मिलता है। यहाँ के लोग बड़े सीधे-सादे तथा सच्चाई व ईमानदारी के ऊँचे आदर्शों पर चलते हैं और अपने अतिथियों का खूब स्वागत करते हैं।

बस से सामान उतार कर हम भी कुछ देर के लिए विश्रामार्थ एक दुकान पर ठहर गए, जहाँ फर्श पर बिछी एक चट्टाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इस होटल रूपी दुकान में भोजन व शयन का प्रबन्ध साधारण ही स्तर का था यानी खाने के लिए चावल व आलू-पूड़ी और सोने के लिए फर्शी बिस्तरे। रात

को ओढ़ने के लिए यहाँ के दुकानदारों से कम्बल-आदि भी मिल जाते हैं। अतएव मध्यम व ऊँचे वर्ग के तीर्थयात्रियों तथा पयर्टकों को यहाँ अधिकाधिक संख्या में आकृष्ट करने के लिए इस अनुपम घाटी को शीघ्र ही विकसित करने की बड़ी आवश्यकता है।

केदारनाथ जाने से पूर्व हमने वहाँ दूसरी और तीसरी बार जाने वाले कुछ यात्रियों से पूछताछ की। मालूम हुआ कि यह सारा मार्ग निरन्तर चढ़ाई का है और यात्री को साधारणतया वहाँ पहुँचने के लिए डेढ़-दो दिन लगते हैं। पर कुछ लोग तो इस सफ़र को एक ही दिन में तय कर लेते हैं। इस यात्रा का कोई निश्चित समय नहीं है जिससे सुबह से शाम तक यात्री अपनी-अपनी सुविधा के अनुकूल इस यात्रा का शुभारम्भ करते हैं।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं सोन प्रयाग की अनुपम घाटी में एक दिन और रुककर उसकी अपूर्व सुषमा को जी भर कर निहारूं, पर टोली के अन्य सदस्यों के आग्रह और केदारनाथ से शीघ्र ही साक्षात्कार करने की प्रबल लालसा ने मुझे ऐसा न करने दिया। अतः दोपहर का भोजन करके ठीक एक बजे सोन गंगा के पुल से होकर हमने केदारनाथ की ओर अपनी पद्-यात्रा आरम्भ की। हमारी टोली में कुली को मिलाकर पाँच व्यक्ति थे जिनमें लेखक, लेखक की पत्नी श्रीमती उषा रानी, पत्नी की बड़ी बहन श्रीमती सावित्री मल्होत्रा तथा उनका ज्येष्ठ पुत्र श्री कृष्ण चन्द्र मल्होत्रा था। प्रौढ़ होने के साथ-साथ श्री मल्होत्रा हमारी टोली का छायाकार भी था। चलते समय मौसम साफ़ और यात्रा के लिए उपयुक्त था।

३

केदारनाथ से हमारा साक्षात्कार !

□□

सोन प्रयाग से आगे बढ़ते ही एकदम खड़ी चढ़ाई थी परन्तु हम सबमें खूब उत्साह था और मन में केदारनाथ के देवरम्य दर्शन की लग्न जिससे हमारी सारी यात्रा सुखद और आनन्दमय रही। चढ़ाई के साथ-साथ हरे-भरे वृक्षों की नयनाभिराम शोभा हमारे सामने से उमड़ती जा रही थी और दोनों ओर के पर्वतों के बीच विभिन्न आभा वाले सैकड़ों पत्थर-चट्टानों के संग उछलती-कूदती मन्दाकिनी गंगा धीमे प्रवाह से बह रही थी। वैसे तो हम इस सुर-सरिता को रुद्र प्रयाग से बराबर देखते आ रहे थे, किन्तु ज्यों-ज्यों हम इसके उद्‌गम के निकट बढ़ते जा रहे थे त्यों-त्यों इसका रूप, इसका रंग और इसका माधुर्य और भी अधिक निखरता जा रहा था। जगह-जगह प्रपात का रूप बनाती इसकी फेनिल-दुधिया धाराएं मन को बराबर आकृष्ट किए रखती थीं। इस तरह हमें मार्ग की थकान के स्थान पर पग-पग एवं कदम-कदम पर पद् यात्रा का मधुर आनन्द अनुभव होने लगा। किसी ने ठीक ही कहा है—"उत्तराखंड की देवरम्य घाटियों में चलते हुए जो परम सुख पद्-यात्रा में मिलता है, वह मोटर, बस अथवा जीप में कहां मिल सकता है ?"

सोन प्रयाग से केदारनाथ तक का पैदल मार्ग पर्याप्त चौड़ा है जिसपर पाँच-छः यात्री एक साथ चल सकते हैं। इस लिए इस मार्ग में केदारनाथ के यात्री निर्भीक होकर आते-जाते हैं। यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए यहाँ पर जगह-जगह चट्टियाँ

बनी हुई हैं। गढ़वाली भाषा में 'चट्टी' पड़ाव को कहते हैं। इन चट्टियों में पानी के लिए नलकूप तथा खाने के लिए दुकानों के अलावा रात को सोने की भी व्यवस्था होती है। इन चट्टियों में अभी भी सुधार की बहुत आवश्यकता है।

केदारनाथ के तीर्थयात्री देश भर से आते हैं। हमारे साथ-साथ चलने तथा वहाँ से लौटने वाले यात्रियों में हर आयु, वर्ग और प्रदेश के लोग थे जिनमें अधिकांश पूर्वी और दक्षिणी भारत के निवासी थे। पुरुषों के साथ महिलाओं की भी गिनती कम न थी। ये लोग भक्तिभाव से प्रेरित होकर बीच-बीच में केदारनाथ के जयकारे भी लगाते रहते थे जिससे शान्तयुक्त पर्वत भी उस समय कभी-कभी मुखरित होते प्रतीत होते थे। इस प्रकार दो घन्टे के निरन्तर मार्गारोहण के पश्चात् मुंडकटा और तोलापानी की चट्टियों से होकर हम कुछ देर के लिए गौरीकुंड रूके।

प्रकृति का उपहार

सोन प्रयाग से पाँच किलोमीटर दूर और सिन्धु की सतह से १,८०० मीटर की ऊँचाई पर स्थित गौरीकुंड सचमुच ही प्रकृति का एक अनोखा उपहार है। यहाँ की विशेषता गर्म जल का एक कुंड है जिसे देखकर ऐसा लगता है जैसे यहाँ कोई आग छिपी हुई है जो इसे सदा गर्म रखती है। कहा जाता है कि पार्वती नित्य यहां आकर स्नान करती थीं। इसलिए इस जगह को 'गौरीकुंड' कहते हैं। यहाँ पर पार्वती जी का मंदिर भी है। गौरीकुंड में इस गर्मकुंड के अलावा शीतल जल का एक और कुंड भी है। इन कुंडों के निकट ही छल-छल करता मन्दाकिनी का मन्द-मन्द नैसर्गिक संगीत बराबर सुनाई देता है।

गौरीकुंड पहुँचकर हमने गर्मकुंड में स्नान किया जिसका

जल काफी गर्म था। स्नान करते ही मार्ग की सारी थकान काफूर हो गई और हम अगली यात्रा के लिए फिर से ताज़ा हो गए। यद्यपि हमारे देश के अन्य भागों में विशेषतः हिमालय में ऐसे कई तप्तकुंड हैं फिर भी उत्तराखंड में गौरीकुंड के इस अनूठे स्त्रोत का अपना अलग महत्व है। इसकी विशेषता यह है कि इसका जल नलकूप की तरह कुछ ऊँचाई से कुंड में गिरता है जिससे स्नान-आदि में बड़ी सुविधा एवं स्वच्छता रहती है। इसके जल में गन्धक, जस्ता, लोहा आदि खनिज पदार्थ पाए जाते हैं जो चमड़ी के अनेक रोगों के लिए बड़े उपयोगी हैं।

जंगल में मंगल

गौरीकुंड में स्नान से निवृत होकर तथा कुछ खा-पीकर हमने फिर अपनी पद्-यात्रा आरम्भ की। वहाँ से हमारा अगला पड़ाव जंगल चट्टी था। यह स्थान गौरीकुंड से तीन किलोमीटर दूर है और सागर-तट से २,७०० मीटर ऊँचा शाम का सुहाना समय था और जंगली हिमानी वायु चल रही थी। ऐसे लुभावने समय में प्रकृति के खुले आंगन में अकेले चलना भला किस को नहीं भाता होगा ? इस हेतू मैं भी कुछ देर के लिए अपने प्रिय-जनों से अलग होकर अकेला ही जंगल चट्टी की ओर बढ़ने लगा। सच पूछिए तब एकांकीपन की जगह मुझे ऐसा लगने लगा जैसे हरे-भरे वृक्ष ही मेरे साथी हैं, निर्झर वार्तालाप के पात्र और नदी एक महान उपदेशक। कुछ देर बाद शाम सुहावनी सन्ध्या में ढलने लगी और अपनी सिन्दूरी आभा को समेटे वह धीरे-धीरे हिम मंडित शिखरों से उतरकर जंगल चट्टी के झुरमुटों में छिप रही थी। इस तरह इस पड़ाव के निकट पहुँच कर हमने रात्रि-विश्राम के लिए वहीं रूकने का निश्चय किया। जंगल चट्टी में भी हमें

सोन प्रयाग की भाँति खाने को आलू-पूड़ी ही मिले और सोने को फर्शी बिस्तरे।

जंगल चट्टी में मौसम अधिक ऊँचाई के कारण जल्दी-जल्दी बदलता रहता है। रात होते-होते बर्फीली हवा तेज़ी से चलने लगी और एकाएक आकाश से हिमवर्षा की मोटी-मोटी बूदें बरसने लगीं जिससे ठन्डक बढ़ने लगी। अतः अगले पड़ाव में जाने वाले यात्री भी जंगल चट्टी में ही रूक गए और इस तरह जंगल में मंगल हो गया।

सौभाग्यवश जिस दुकान रूपी होटल में हम ठहरे थे, वहाँ पर कुछ और भी साहित्य-प्रेमी आकर ठहर गये जिससे भोजन के उपरान्त रात को काफी देर तक टैगोर, कालिदास, तुलसी, कबीर, नानक, प्रसाद, निराला, पंत आदि कवियों की काव्य-मन्दाकिनी बहती रही। सोने से पूर्व हमने दुकान से बाहर आकर देखा तो देवदार के झुरमुटों में शशिराज की धवल-ज्योत्सना दूर-दूर तक छिटक रही थी। उस समय चारों ओर खामोशी थी और खड्ड में बहती मन्दाकिनी का अनवरत निनाद भी शान्त प्रतीत हो रहा था। वापसी में लौटते हुए इसी स्थली के आस-पास जब सन्ध्या के धुमिल प्रकाश में हमारे लिए चलना बोझल एवं कठिन हो गया था तभी गगन-बिहारी ने अपना दुधिया आलोक बिखेर कर हमारा मार्ग-दर्शन किया।

प्रातः उठते ही हमने जय केदारनाथ बोल अपने दूसरे दिन अर्थात् २३ मई की यात्रा प्रारम्भ की। उस समय मौसम बड़ा सुहावना था। सूरज देवता तब तक पर्वतों की चोटियों पर चमक रहे थे। थोड़ी दूर जाने पर हमें १८० मीटर ऊँचा एक विशाल जल-प्रपात दिखाई दिया जिसका फेनिल-दूधिया जल पर्वतीय चट्टानों से टकराता हुआ सीधा मन्दाकिनी की उत्ताल तरंगों में जाकर समाहित हो रहा था। इस जगह का नाम चीरवासा है।

उस समय मैं इस प्रपात से पूछना चाहता था कि तुमने तो उस प्राचीन सभ्यता को देखा होगा जिस पर हमें आज भी गर्व है। जल-प्रपातराज ! देवभूमि केदारखण्ड के उन महान् संस्कृति-निर्माताओं के बारे में कुछ बताओ जो आज संसार के लिए रुचि-कर और इतिहास के पाठकों के लिए मनन का विषय बने हुए हैं। परन्तु जल-प्रपात की छल-छल करती ध्वनि एक ही तान पर टूट रही थी, मानो वह कह रही थी कि प्रकृति और पुरुष का नाता अटूट है।

भेड़ों का एक रेवड़ मिला

जंगल चट्टी से चलकर जब हम उसके ऊपरी शिखर पर पहुँचे तब वहाँ के पर्वत हमें एकदम नंगे और मटियाले दिखाई दिये। पेड़-पौधों का तो वहाँ बिल्कुल अभाव था। केवल धरती पर छोटी-छोटी मखमली घास ही उगी थी। यहाँ हमें भेड़ों का एक रेवड़ मिला। उसके भोटिए गूजर से पूछने पर मालम हुआ कि वे लोग सर्दी के मौसम में तराई के जंगलों में रहते हैं और गर्मी में पर्वतों के ऊँचे स्थानों में पहुँच जाते हैं। यहाँ की भाषा में इस मखमली घास को 'बुग' और चरागाहों को 'बुग्याल' कहते हैं। इन चरागाहों में पचास-साठ भेड़-बकरियों का झुंड लेकर ये लोग खुले आकाश में अपना डेरा डाल देते हैं किसी सपाट-सी चट्टान के नीचे। इस टोली में प्रायः एक-दो भोटिया कुत्ते भी होते हैं जो दिन में भेड़-बकरियों को लेकर चराने चल देते हैं और शाम को अपने डेरे में वापस आ जाते हैं तथा वक्त पड़ने पर शेर, चीते, तेंदुए, रीछ आदि हिंसक पशुओं से इनकी रक्षा करते हैं। नवम्बर-दिसम्बर के ठंडे महीनों में जब इन चरा-गाहों में वर्फ गिरने लगती है तब यह लोग तराई में लौट जाते हैं।

रामबाड़ा

जंगल चट्टी से हमारा अगला पड़ाव रामबाड़ा था जो सोनप्रयाग-केदारनाथ मार्ग का सबसे प्रमुख पड़ाव है। यहाँ की ऊँचाई ३,३५३ मीटर है और केदारनाथ मार्ग के मध्य में स्थित होने के कारण अधिकांश यात्री रात यहीं बिताते हैं। यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए सरकार की ओर से यहाँ पर एक बड़ा-सा विश्रामगृह और आर्युवेदिक प्राथमिक चिकित्सालय भी है। रामबाड़ा की आबादी पाँच सौ व्यक्ति है जिसमें बीस-पच्चीस घरों के लोग और आठ-दस दुकानदार रहते हैं।

वस्तुतः रामबाड़ा से आगे केदारनाथ का हिममंडित क्षेत्र आरम्भ होता है। वर्षा ऋतु के अतिरिक्त यहाँ पर वर्ष भर जगह-जगह बर्फ दिखाई देती है—चोटियों पर, खाइयों में तथा नदी के ऊपर। हम जब इस हिममंडित मार्ग से गुज़र रहे थे तब एक स्थान पर हमें इतनी अधिक बर्फ देखने को मिली जिसने शिखर से लेकर खाई तक के समूचे भू-भाग को अपने आवरण में ढक लिया था। यह बर्फ संगमरमर की तरह सख्त और चाँदी जैसी चमकीली थी। दरअसल वह एक छोटा-सा हिमानी यानी ग्लेशियर था जिसको धूप में पार करना हमारे लिए असम्भव तो नहीं बल्कि कठिन जरूर था। वैसे भी ग्लेशियर को सुबह-सुबह ही पार कर लेना चाहिए, क्योंकि धूप में बर्फ के पिघलने से इसमें कहीं-कहीं छोटे-मोटे छेद हो जाते हैं। यदि भूल से कोई इसमें एक बार फँस जाए तो फिर खैर नहीं !

सौभाग्यवश वहाँ पर यात्रियों की सहायतार्थ एक गढ़वाली श्रमिक फावड़े से बर्फ को काट-काटकर सीढ़ियाँ बना रहा था। बल्लम सहित बाँस की छड़ी की मदद से पग-पग पर सम्भलकर हमने लगभग दो सौ मीटर लम्बे उस ग्लेशियर को पार कर सुख

की साँस ली। सचमुच ही, यह हमारे लिए यात्रा का एक नया और रोमांचक अनुभव था जिसको याद कर आज भी भय-मिश्रित आनन्द का संचार हो रहा है।

श्रद्धा की शक्ति महान्

रामबाड़ा से गरुड़ चट्टी तक का सफ़र केदारनाथ यात्रा का सबसे कठिनतम् भाग समझा जाता है। इस मार्ग में हमें ३,४०० मीटर ऊँचा कुबेर भंडार का भव्य स्थान देखने को मिला। कहते हैं कि कुबेर राजा इन्द्र का कोषाध्यक्ष है। यहाँ से आगे बढ़ते ही दमतोड़ देने वाली चढ़ाई के साथ-साथ अधिक ऊँचाई पर पतली हवा होने के कारण आक्सीजन की कमी से साँस लेने में काफ़ी कठिनाई महसूस होती है। पग-पग पर अपने केदार बाबा को याद करते हम केदारनाथ की महान् मंजिल पर आगे बढ़ते हुए गरुड़ चट्टी पहुँच गए। कुबेर भंडार से गरुड़ चट्टी के दुर्गम पथ पर चलते हुए मेरी पत्नी तथा उनकी बड़ी बहन की दशा दयनीय थी। वे दोनों ही पहले से क्रमशः श्वास रोग और टाँगों के दर्द से पीड़ित थीं। पर विश्वास कीजिए कि स्वास्थ्य के खराब होते हुए भी केदारनाथ के प्रति उनकी श्रद्धा तथा दोनों बहनों का परस्पर स्नेह ही उन्हें पैदल चलने में ही प्रेरित करता रहा और अन्त में वे अपने गन्तव्य स्थल पर जा पहुँचीं। इस घटना को हम श्रद्धा की शक्ति महान् कहेंगे, क्योंकि मैदानों में साधारणतया ये दोनों ही महिलाएँ एक-दो किलोमीटर से अधिक नहीं चल पातीं।

जीवन दर्शन का सार

गरुड़ चट्टी पर हम सबने कुछ देर आराम किया और चाय पी। चाय के नाम पर गर्म पानी से संतोष करना पड़ा और वह भी कड़वा। इसके बाद हम वहाँ चारों ओर बिखरी प्रकृति-माँ की मनोहारी छटा को निहारने लगे। सामने के हिमशिखर ध्यानस्थ तपस्वी-से लग रहे थे और दाएं ओर के गहरे खड्ड में छोटे-बड़े कई हिमभंडार यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे। यहाँ बहती मन्दाकिनी गंगा मानो अपने जीवन-दर्शन का सार समझा रही थी—मनुष्य आते हैं और चले जाते हैं पर मैं बराबर बहती रहती हूँ दुःख-सुख एवं हर्ष-विषादों से परे तथा मानव-कल्याण के लिए उत्सुक। मेरे रास्ते में पहाड़ आएँ अथवा हिम-भंडार, मेरा काम तो निरन्तर बढ़ना है अपने गन्तव्य की ओर। जीवन में एक बार जो कोई अपने गन्तव्य को पहचान लेता है, वह फिर कभी भटकता नहीं और सदैव अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है, क्योंकि गति में जीवन है और गन्तव्य की ओर बढ़ने का नाम प्रगति है।

गन्तव्य के पास

और तभी हमारे थके-हारे कदमों में बिजली लिपट गई और हम फिर उत्साहित होकर गन्तव्य की ओर बढ़ने लगे। आगे चढ़ाई न थी और रास्ता करीब-करीब सपाट था। यद्यपि चारों ओर शाँति थी फिर भी बीच-बीच में 'केदारनाथ की जय' के घोष बराबर सुनाई दे रहे थे। इस प्रकार एक घन्टे तक पर्वत के ऊपरी भाग में चलने के बाद मार्ग चौड़ा होता गया और हम समझ गए कि हम अपने गन्तव्य के पास आ पहुँचे हैं। एकाएक

हमारी दृष्टि मार्ग के दाईं तरफ लकड़ी के स्टैंड पर रखे एक नामपट पर जा टिकी जिस पर लिखा हुआ था—"केदार आपके सन्मुख है।" वैसे इस स्थली विशेष को देव दिखनी भी कहते हैं।

नैसर्गिक सुन्दरता से भरपूर देवरम्य केदारनाथ हमारे सामने थे, हमारे बिल्कुल ही सामने, कोई एक किलोमीटर दूर। कदम-कदम एवं चप्पा-चप्पा पर उसके दिव्य स्वरूप से साक्षात्कार कर हमारा रोम-रोम खिल उठा! ज्यों-ज्यों हम उसके सन्निकट आते जा रहे थे त्यों-त्यों हमारा मन और शरीर दोनों ही हल्के होते जा रहे थे। विचार पवित्र और निर्मल तथा मस्तिष्क स्थिर और शान्त, मानो हमने गीता की स्थितप्रज्ञ अवस्था प्राप्त कर ली हो और साथ ही स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर और उसमें बैठा जीव भी सम्भवतः उस शाश्वत आनन्द का अमृतपान कर रहा होगा। केदारनाथ में मुकुटमणि हिमालय के जिस देवरम्य रूप-छटा का हम दिग्दर्शन कर रहे थे वैसा सुन्दर और प्रेरक स्थान हमने कभी नहीं देखा था!

पंच गंगा की घाटी

समुद्र की सतह से ३,५२५ मीटर की ऊँचाई पर और उत्तराखण्ड के अंतराल में स्थित केदारनाथ घाटी निःसन्देह गिरिराज हिमालय की सर्वश्रेष्ठ घाटी है। इसकी तुलना में हमें भूतल के स्वर्ग कश्मीर की श्रीनगर, पहलगाम, चन्दनबाड़ी, पचतरणी आदि घाटियाँ भी कुछ फीकी-सी लग रही थीं। केदारनाथ की अलौकिक सुन्दरता उसकी पृष्टभूमि में खड़ी विशाल धवल हिमानी और दोनों ओर के ध्यानमग्न नग्न उत्तुंग गिरिश्रृंग से है। इस देवरम्य घाटी के बीच में कल-कल करती हल्के नीले रंग की मन्दाकिनी गंगा प्रवाहित हो रही है जिसपर आने-जाने के

लिए एक छोटा-सा पुल भी है। पुल के पास ही मन्दाकिनी में चार और धाराएँ—मधु गंगा, क्षीर गंगा, सरस्वती तथा स्वर्गद्वारी आकर मिलती हैं। इस प्रकार केदारनाथ घाटी को हम पंच गंगा की घाटी भी कह सकते हैं। वस्तुतः पंच गंगा का यह पुण्य संगम ही मेरी इस शोभा-यात्रा का प्रेरणा-स्त्रोत बना। इस प्रसंग में यह बात बताने का मोह मैं संवरण नहीं कर सकता कि मेरे स्वर्गीय पूज्यदेव पिता जी प्रकृति के अनन्य उपासक थे। मेरा प्राकृतिक सौन्दर्य-प्रेम भी मुझे उनसे विरासत में मिला है। उनके भस्मी के कुछ अंश जो मैं दिल्ली से अपने साथ यहाँ लाया था, उनको यहाँ प्रवाहित कर मुझे आत्म-संतोष हुआ।

केदारनाथ पुरी

केदारनाथ की बस्ती में एक छोटा सा बाजार, पोस्ट आफिस चिकित्सालय, बैंक तथा निवास के लिए कुछ विश्रामगृह और धर्मशालाएँ हैं। यहाँ के पुरोहित भी अपने मकानों में अपने यजमानों को सहर्ष ठहरा लेते हैं। केदारनाथ में पहुँच कर हम भी अपने पुरोहित श्री अमरनाथ पोस्ती के पास ही ठहरे जिन्होंने हमारे लिए निवास, भोजन, स्नान आदि की हर प्रकार की समुचित व्यवस्था कर दी थी। फिर भी उनके बारे में मेरा यहाँ यह लिखना अनुचित न होगा कि हमारे उत्तराखंड-प्रवास में उन जैसा आतिथ्य-सत्कार और मार्ग-दर्शन हमें आज तक अन्य किसी तीर्थधाम में नहीं मिला।

केदारनाथ द्वादश ज्योतिलिंगों में एक है। इसके दर्शनों के बाद ही यात्रीगण बद्रीविशाल की यात्रा करते हैं। यहाँ का प्रमुख आकर्षण प्रख्यात शिव मंदिर है जिसकी स्थापना आदि गुरु शंकराचार्य जी ने की थी। कहते हैं कि पांडव द्वापर युग में यहाँ

पर आए थे और शंकर ने उन्हें सगोत्र एवं गुरु दोषी जानकर दर्शन न देने का निश्चय कर भैंसे का रूप धारण कर धरती में प्रवेश करना चाहा। परन्तु भीम ने उन्हें पीछे से पकड़ लिया जिससे प्रसन्न होकर शिव ने पांडवों को अपने विराट् रूप में दर्शन दिए। यहाँ की त्रिकोण शिला को उस भैंसे का पार्श्व भाग माना जाता है। इसके शेष भाग का मदमहेश्वर में नाभि, तुंगनाथ में बाहु, रुद्रनाथ में मुख और कल्पेश्वर में जटा है। यही 'पंचकेदार' भी कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में पशुपतिनाथ में सिर है। कहते हैं कि इन सभी मंदिरों की स्थापना पहले-पहल पांडवों ने ही की थी। केदारनाथ आने से पूर्व पांडव शिवजी के दर्शनों के लिए काशी गए थे। यह जानकर शिव वहाँ से चल दिए और कुछ दिन तक हिमालय में आकर गुप्तरूप से गुप्तकाशी में रहे। पांडव भी खोजते-खोजते जब इधर पहुँचे तब शिव यहाँ से निकल कर केदारनाथ आए। इस तरह पांडवों को भी जब उनके प्रस्थान का पता चला तो वे भी केदारनाथ पहुँच गए।

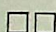
केदारनाथ का शिव मंदिर गढ़वाल और कुमाऊँ के मंदिरों में सबसे प्राचीन, भव्य और कलात्मक है। यह मंदिर एक लम्बे चौकोर चबूतरे पर बना हुआ है। अन्य मंदिरों की तरह यह भी दक्षिणी स्थापत्य कला की शैली पर ही निर्मित है जो बड़े-बड़े स्लेटी पत्थरों का बना हुआ है। इसके दो भाग हैं जिसमें एक में शिखरदार गर्भ गृह तथा दूसरे में चौकोर मंडप। इसके बाहरी प्रासद में कृष्ण, द्रौपदी, नन्दी, पार्वती, पांडव व लक्ष्मी की पाषाण मूर्तियाँ हैं। इसके निकट ही शंकराचार्य की समाधि स्मारक के रूप में विद्यमान है। मंदिर के आसपास उद्दक, हँस, अमृत और रेत नामक चार कुंड हैं।

यहाँ के निकटवर्ती स्थानों में चुरबारी ताल, वासुकी ताल, ब्रह्म गुफा और युकुंडा भैरव के समीप की वह बर्फानी झील है

जहाँ से मन्दाकिनी गंगा का उद्भव होता है। चुरबारी ताल बस्ती से तीन किलोमीटर दूर धवलधार शिखरों से लगी हुई एक मनोरम झील है। महात्मा गाँधी जी की भस्मो-विसर्जन के बाद इस सरोवर का नाम गाँधी सरोवर रखा गया है। इसको देखने का सबसे उत्तम मौसम वर्षा ऋतु का है जब यहाँ के पर्वत बर्फ की जगह हरी-हरी घास और रंग-बिरंगे फूलों से सुशोभित हो उठते हैं। वासुकी ताल केदारनाथ के पश्चिमोत्तर में लगभग छः किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस ताल में वर्षा ऋतु में ब्रह्मकमल के फूल देखने को मिलते हैं। यहीं से सोन गंगा (वासुकी गंगा) उद्भूत होकर सोन प्रयाग पर मन्दाकिनी में समाहित हो जाती है। ब्रह्म गुफा चुरबारी ताल से लगभग चार किलोमीटर आगे है। कहते हैं कि यहाँ पर पांडवों ने अंतिम यज्ञ किया था और उसके बाद वे द्रोपदी और श्वान सहित स्वर्गारोहण महापंथ पर आगे बढ़े। मन्दाकिनी गंगा का उद्गम स्त्रोत भी केदारनाथ घाटी से केवल छः किलोमीटर को दूरो पर है।

४

मन्दाकिनी से अलकनन्दा तक



केदारनाथ में हम दो दिन रहे। वहाँ से लौटते समय २६ मई को हम मध्याह्न एक बजे के लगभग केदारनाथ को अपनी अंतिम श्रद्धांजली अर्पित करने के लिए पुल को पारकर पहाड़ी पर गए। उस समय मंदिर के पीछे वाली विशाल रजत ढलानदार शिखरावली चमचमाती किरणों के प्रकाश में चक्षुओं को चकाचौंध करने लगी। कैसा अद्‌भुत, कैसा अलौकिक, कैसा अकथनीय और कैसा आत्मविस्मृति कराने वाला था केदारनाथ और नीलकंठ शिखर का वह महान् दृश्य !

इसके साथ ही, मन्दाकिनी के उद्‌गमतीर्थ और पंच गंगा के संगम को मन-ही-मन प्रणाम कर हम लौट पड़े सोन प्रयाग की ओर केदार-दर्शन की सुखद स्मृतियों को संजोए। उस वक्त यदि एक ओर पुल पर खड़े होकर एक गढ़वाली व्यक्ति ने बार-बार नगाड़ा बजाकर हमें विदा किया तो दूसरी ओर प्रकृति-रानी ने भी पुष्पों के रूप में छोटे-छोटे हिमकण बरसा कर हमारी इस सफल-यात्रा पर बधाई दी। वापसी में भी हम रात को जंगल चट्‌टी में ही रुके और अगले दिन अर्थात् २७ मई की दोपहर को सोनप्रयाग से बस में बैठकर शाम तक रुद्र प्रयाग पहुँच गए।

बद्रीनाथ के पथ पर

दरअसल ऋषिकेष से केदारनाथ और बद्रीनाथ के तीर्थ-

यात्रियों के लिए रुद्र प्रयाग तक एक ही मार्ग है जिससे केदारनाथ से लौटते समय भी रुद्र प्रयाग आना होता है। अतः रात रुद्र प्रयाग के एक होटल में बिताकर अगले दिन यानी २८ मई को पौ फटते-फटते हमारी बस मन्दाकिनी से विदा ले एक बार फिर अलकनन्दा के साथ-साथ चल दी। बद्रीनाथ का मार्ग केदारनाथ के मार्ग की अपेक्षा अधिक बीहड़ एवं दुर्गम है। इस मार्ग पर बढ़ते ही हमारे एक ओर कंकरीली पहाड़ियाँ थीं तो दूसरी तरफ़ गहरी खाइयाँ। ढलानों पर कहीं-कहीं हरे-हरे खेत और श्यामल झाँड़-झँखाड़ भी देखने को मिले। नीचे खड्ड में सहस्त्रों पत्थर-चट्टानों के साथ खिलवाड़ करती अलकनन्दा द्रुत गति से बह रही थी। इसका प्रवाह मन्दाकिनी जैसा मन्द-मन्द और शान्त न था बल्कि अधिक प्रखर था। हरित परिधान पहने पर्वतों के बीच वह ऐसे मालूम देती थी मानो प्रकृति-नटी की कमर में विश्वकर्मा ने चाँदी की करधनी बाँधी हो। परन्तु उसे देखना कोई सरल काम नहीं था। बस से नीचे की ओर दृष्टिपात करते ही होश गुम हो जाते थे और भय से शरीर काँपने लगता था। कई मोड़ों पर ऐसा लगा कि बस अब लुढ़की, तब लुढ़की और हम गिरे नदी की तेज़ धारा में। इस प्रकार बस में बैठे-बैठे कर्ण प्रयाग और नन्द प्रयाग से होते हुए हम चमोली पहुँचे। कहते हैं कि कर्ण प्रयाग में पांडवों के भाई कर्ण ने और नन्द प्रयाग में राजा नन्द ने तपस्या की थी। इन दोनों स्थानों पर अलकनन्दा में क्रमशः पिंडार और नन्दाकिनी नामक नदियों का संगम होता है। अतः कर्ण प्रयाग व नन्द प्रयाग बद्रीनाथ राजमार्ग के तीसरे और चौथे प्रयाग हैं।

चमोली

चमोली अब उत्तर प्रदेश का एक सीमावर्ती ज़िला है

जो कुछ समय पूर्व तक पौड़ी-गढ़वाल का ही भाग था। यहाँ पर अच्छी बस्ती है जिसमें डाक घर, न्यायालय तथा जिला के कई कार्यालय हैं। इसकी ऊँचाई से एक पैदल मार्ग रुद्रनाथ, तुँगनाथ ऊखीमठ होता हुआ गुप्तकाशी से जा मिलता है। केदारनाथ मार्ग की भाँति यह मार्ग भी प्रकृति के विभिन्न दृश्यों से भरपूर है।

गोहना या गोणताल चमोली से बीस किलोमीटर दूर और रुद्र प्रयाग-बद्रीनाथ मार्ग से केवल दस किलोमीटर की दूरी पर है जो उत्तराखंड की सबसे बड़ी झील मानी जाती है। इसे कुछ लोग द्रुमी अथवा बिरहीताल भी कहते हैं। सन् १८९३ में इस घाटी में कोई ताल न था, किन्तु भारी वर्षा के कारण द्रुमी गाँव के पार्श्व हट गए जिससे बिरही नदी का पानी एक वर्ष तक रुक गया और विशाल तालाब बन गया। इस ताल की लम्बाई चार किलोमीटर और चौड़ाई एक किलोमीटर के लगभग है।

जोशी मठ

चमोली में कुछ देर रुककर हमने वहीं प्रातः का नाश्ता किया और उसके बाद हमारी बस पीपल कोटी होती हुई मध्याह्न दो बजे तक जोशी मठ पहुँच गई। जोशी मठ शंकराचार्य जी की तपो-भुमि रही है। शीतकाल में बद्रीनाथ जी की चल मूर्ति को यहीं लाकर रखा जाता है। कुछ वर्ष पूर्व जोशी मठ तक ही सड़क थी और बद्रीनाथ के यात्रियों को तीस किलोमीटर का आगे का यह सफर पैदल ही तय करना पड़ता था। परन्तु अब सड़क के निर्माण हो जाने से सभी यत्री बस में बैठे-बैठे सीधे बद्रीनाथ पुरी में जा उतरते हैं।

रूद्र प्रयाग से ११३ किलोमीटर दूर जोशीमठ की ऊँचाई

१,८६० मीटर है। इसकी सारी बस्ती पर्वतीय ढाल में बसे होने के कारण देखने में बड़ी सुन्दर लगती है। यहाँ पर डाक-तारघर, चिकित्सालय, डाक बंगला और अच्छा बाजार है। सेब, नाशपाती, आड़ू आदि फलों के उद्यान यहाँ लगाए गए हैं। सीमा-वर्ती क्षेत्र होने के कारण भी इस स्थान का बहुत महत्व है। जोशीमठ से तिब्बत को दो मार्ग जाते हैं, एक नीती-डाँडी से और दूसरा माणा से। यहाँ पर नृसिंह तथा वासुदेव के प्रसिद्ध मंदिर हैं।

जोशीमठ को गढ़वाल-कुमाऊँ प्रदेश के प्रथम राजवंश कत्यूरियों की राजधानी होने का भी गौरव प्राप्त है जो बाद में कीर्तिकेयपुर में रही। कश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण की 'राजतरिंगनी' के अनुसार आठवीं शताब्दी के बीच में इस नगरी में कश्मीर नरेश ललितादित्य ने अपनी दिग्विजय यात्रा में यहाँ पर नृसिंह (नरसिंह) की मूर्ति की स्थापना की थी।

विष्णु प्रयाग

जोशीमठ से चलकर हमारी बस फिर पहाड़ों की तलहटी में उतरने लगी और धौली गंगा (विष्णु गंगा) के पुल को पार कर हम विष्णु प्रयाग पहुँचे। यह स्थान जोशीमठ से तीन किलोमीटर दूर है और सिन्धु के तल से १,३५० मीटर ऊँचा। यहाँ पर धौली गंगा और अलकनन्दा का सुमिलन बड़ा ही रोमाँचकारी लगता है। एक ओर धौली गंगा का प्रखर-प्रचण्ड प्रवाह है तो दूसरी तरफ अलकनन्दा का गर्जन-तर्जन जो दोनों मिलकर शिव के ताण्डव-नृत्य का-सा आभास देता है। इस तरह विष्णु प्रयाग बद्रीनाथ-मार्ग का पाँचवाँ और अंतिम प्रमुख प्रयाग है।

पाँडुकेश्वर

विष्णु प्रयाग से पाँडुकेश्वर लगभग नौ-दस किलोमीटर दूर है जिसकी ऊँचाई १,८०० मीटर है। कहा जाता है कि यहीं कुन्ती ने पाँडवों को जन्म दिया था और महाराज पाँडु की मृत्यु भी यहीं हुई। यहाँ का योगध्यानी मंदिर बड़ा प्रसिद्ध है। बस्ती भी खासी बड़ी है—डाकघर, डाकबंगला और छोटा-सा बाजार। विष्णु प्रयाग और पाँडुकेश्वर के बीच गोविन्द घाट नामक स्थान भी बड़ा प्रसिद्ध है जिसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

हनुमान चट्टी

पाँडुकेश्वर के बाद हमारी बस कुछ देर के लिए हनुमान चट्टी रूकी जो पाँडुकेश्वर से उतनी ही दूर है जितना विष्णु प्रयाग से पांडुकेश्वर। यहाँ की ऊँचाई २,४०० मीटर है और वहाँ से बद्रीनाथ केवल आठ किलोमीटर दूर रह जाता है। वैसे हनुमान चट्टी का कोई विशेष आकर्षण नहीं, यहाँ पर छल-छल करती हनुमान गंगा प्रवाहित हो रही है। हनुमान चट्टी से देव दर्शिनी तक का छः किलोमीटर का सारा मार्ग निरन्तर चढ़ाई के साथ-साथ भयानक मोड़ों तथा छोटे-बड़े बर्फ के तोदों आदि से प्रायः भरा पड़ा रहता है। इस प्रकार इस बीहड़ और दुर्गम मार्ग पर से होती हुई हमारी बस दिन ढलने के पूर्व ही बद्रीनाथ की विशाल घाटी में जाकर खड़ी हो गई।

५

प्रकृति की गोद में बसा बद्री विशाल

□□

मध्य हिमालय की अंतिम पर्वत-श्रेणियों में, ३,१०५ मीटर की ऊँचाई पर प्रकृति की गोद में बसी बद्रीनाथ पुरी हमारे देश की एक महान् एवं विशाल घाटी है। अतएव इसकी गिनती भारत के चार धामों में से सब से बड़े धाम में की जाती है। बाकी के तीन धामों में पूर्व में जगन्नाथ पुरी, पश्चिम में द्वारका और दक्षिण में रामेश्वरम् हैं। अनादि काल से हजारों तीर्थयात्री भक्तिभाव से प्रेरित होकर हर वर्ष यहाँ आते रहे हैं और प्रकृति के शाश्वत सुख को प्राप्त कर वे अपने को धन्य मानते हैं। महर्षि व्यासजी की तो यह साधनास्थली रही है। कहते हैं कि भगवान् कृष्ण भी कुछ समय तक पाँडवों के साथ यहाँ आकर रहे थे। नर और नारायण पर्वत अर्जुन और भगवान् कृष्ण के स्मारक के रूप में अब भी विद्यमान हैं। यहाँ आने वाले महापुरुषों में महात्मा गौतम, जगद्गुरु शंकराचार्य, गुरु बल्लभाचार्य, स्वामी दयानन्द व स्वामी विवेकानन्द के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अति प्राचीन काल में बद्रीनाथ बद्रिकाश्रम, अलकापुरी, विष्णुलोक आदि नामों से प्रचलित रहा है। बद्रिकाश्रम के अधिष्ठाता नारायण जी थे। उस काल में इस आश्रम के आस-पास बेरों के कुछ वृक्ष अवश्य ही रहे होंगे जिससे इसका नाम बद्रिकाश्रम पड़ा। कालिदास का यक्ष बदरीनाथ का ही अधिवासी था जिसका मेघदूत रामगिरी से कनखल, क्रौंचद्वार होता हुआ

गढ़वाल में अल्कनन्दा के उद्गम पर स्थित यक्षों के सम्राट् कुबेर की नगरी अलकापुरी की यात्रा करता है जो बद्रीनाथ से सिर्फ २५ किलोमीटर दूर है। समस्त पुराणों में अलकनन्दा को विष्णु पदी कहा गया है जिससे बद्रीनाथ के पुण्यधाम को विष्णुलोक भी माना जा सकता है।

वस्तुतः बद्रीनाथ घाटी उत्तराखंड की सबसे विशाल घाटी है जिसकी लम्बाई तीन किलोमीटर और चौड़ाई एक किलोमीटर के लगभग है। इसके दोनों ओर हिममंडित नर और नारायण पर्वत खड़े हैं और बीच का समतल-सा मैदान हवाई अड्डे की तरह प्रतीत होता है। मैदान के निचली ओर कल-कल करती अलकनन्दा तीव्र गति से बह रही है। बद्रीनाथ पुरी अलकनन्दा के दाँए तट पर नारायण पर्वत के चरणों में बसी हुई है। यहाँ पर यात्रियों के ठहरने के लिए बिरला धर्मशाला, बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला, परमार्थ निकेतन, पंजाब सिंध क्षेत्र, आंध्र प्रदेश अष्टोत्ती क्षेत्र, जयजलाराम धर्मशाला, भजन आश्रम यात्री गृह तथा पुरोहितों के निवास स्थान हैं। बस्ती में करीब आध किलोमीटर लम्बा एक ही बाजार है जिसमें खाने-पीने तथा अन्य सभी आवश्यक वस्तुओं की दुकानें हैं। बाजार के अन्त में बद्रीनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है। मंदिर के नीचे नदी के तट पर तप्तकुँड, गौरीकुँड, सूर्यकुँड, ब्रह्मकुँड नामक गर्म पानी के चार कुँड हैं। बद्रीनाथ जैसे ऊँचे स्थानों में गर्म पानी के ये तप्तकुँड सचमुच ही प्रकृति के वरदान हैं, क्योंकि साधारणतया यात्रियों के लिए यहाँ अलकनन्दा के बर्फ-से ठन्डे जल में नित्य स्नान करना न तो स्वास्थ्यकर है और न ही सम्भव।

अलकनन्दा की अनूठी छवि

बद्रीनाथ में अलकनन्दा गंगा की अनूठी छवि देखने योग्य है। इसमें स्नान-आदि की सुविधा के लिए तप्तकुंड और ब्रह्म-कपाल के बीच पक्का घाट बना हुआ है। जब हम वहाँ पहुँचे, उस समय नदी का हल्का स्लेटी रंग हमारे मन को खूब लुभा रहा था। इस पर आने-जाने के लिए एक छोटा-सा पुल भी है। पुल पर खड़े होकर हम काफी देर तक बड़ी-बड़ी चट्टानों से टकराती-मटकाती नदी की उत्ताल तरंगों के सुमधुर नाद को सुनते रहे जिसकी तुलना में हमें सिने जगत् की फिल्मी धुनें भी कुछ स्वरहीन-सी लग रही थीं। वास्तव में अलकनन्दा यहाँ पहुँचकर एक तंग मोड़ से होकर बड़े वेग से बहती है।

रुपहली चाँदनी

उस रात को सर्दी कम और मौसम बड़ा सुहावना था। ऊपर नील गगन का विस्तृत वितान। रात्रि के भोजन के उपरान्त जैसे ही टहलता हुआ मैं ऋषि गंगा के पुल से होकर घाटी के मध्य में पहुँचा तब रजत-रुपहली चाँदनी को दूर-दूर तक बिखरा देख कर मेरा मन-मयूर मस्ती से झूम उठा। हमारे सामने के नर पर्वत के शुभ्र ललाट पर मुकुट की भांति विराजमान शशिराज अपनी दूध से भी अधिक उज्जवल चाँदनी के बड़े-बड़े पंखों को पसार रहा था जिससे थोड़ी देर में सारी की सारी घाटी चाँदनी में खिल उठी ! दृश्य अद्भुत और समस्त वातावरण शान्त था। इसके साथ ही, शशिराज चुपके-चुपके पर्वतचोटी से उतरकर अलकनन्दा की पावन धारा में बार-बार डुबकियां लगाकर किलोलें करता था। झिलमिल करते सितारों और पूनम के चाँद

के प्रतिबिम्ब को जल में देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो अलकनन्दा रत्नजटित परिधान ओढ़कर शान्तरस में डूबी हो। उधर पर्वत की ढलानदार समूची पहाड़ी पर छिटकी चाँदनी की मतवाली दृश्यावली हमें किसी स्वप्नलोक का-सा आभास दे रही थी।

पंचतीर्थ संगम

जिस प्रकार केदारनाथ को हम पंच गंगा की घाटी कह सकते हैं वैसे ही बद्रीनाथ को भी पंचतीर्थ संगम कहा जा सकता है। यहाँ पर अलकनन्दा में ऋषि गंगा, कूर्म धारा, प्रह्लाद धारा, और तप्तकुँडों का जल आकर मिलता है। अलकनन्दा नदी के नारदकुँड में स्नान, मार्जन आदि का बड़ा महत्व बताया गया है। यहीं पर नारद शिला है जिसके नीचे अलकनन्दा का जल एक संकीर्ण गुफा से गिरता है। यहाँ पर स्नान आदि की सुविधा के लिए लोहे का एक संगल भी लगा हुआ है। स्नान करते समय मैं अपने देव-वंदित पिता के शेष भस्मी सुमनों को विसर्जित कर अपने को कृत-कृत्य समझ रहा था। नारदकुँड के निकट ही ब्रह्म-कपाल का पौराणिक स्थान है, जहाँ पर लोग अपने पितरों का पिंडदान आदि करते हैं।

ऐतिहासिक कथा

बद्रीनाथ की प्रख्यात मूर्ति के बारे में भिन्न-भिन्न विचार हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह मूर्ति पौराणिक युग की वही मूर्ति है जिसे नारद पूजते थे। बौद्ध इसी मूर्ति को बुद्ध भगवान् ओर जैन इसे पारसनाथ अथवा ऋषभदेव की मूर्ति बताते हैं।

बद्रीनाथ के निकटवर्ती माणा गाँव के निवासी इसको 'भोटिया देवता' कहकर पुकारते हैं। इन लोगों की बद्रीनाथ की मूर्ति में बड़ी आस्था है। पर इसका परम श्रेय जगद्‌गुरु शंकराचार्य जी को है जिन्होंने सातवीं-आठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत से दिग्विजय यात्रा में बद्रीनाथ में पचास मूर्तियों के साथ इस दिव्य मूर्ति को नारदकुँड से निकालकर तप्तकुंड के पास गरुड़ कोटि नामक गुफा में स्थापित किया। तव से बद्रीनाथ की पूजा दक्षिण भारत (केरल) के नम्बूद्री जाति के ब्राह्मण करते हैं जिन्हें 'रावल' कहते हैं। इसी प्रकार केदारनाथ में कर्नाटक के शैव सम्प्रदाय के ब्राह्मण पूजा करते हैं। उत्तर भारत के इन देवालयों में पूजा के लिए दक्षिण भारत से पुजारियों का जो नियम है वह शंकराचार्य जी के समय से अब तक चला आ रहा है।

मंदिर का मुख्य द्वार साढ़े तेरह मीटर ऊँचा है। इसमें प्रवेश करते ही लगभग एक मीटर ऊँची पद्‌मासन में लीन काले पाषाण की बद्रीनाथ की दिव्यमूर्ति सहज ही तीर्थयात्रियों एवं कला-प्रेमी लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इसके अगल-बगल में नर, नारायण, उद्धव, कुबेर और नारद जी की मूर्तियाँ हैं। परिक्रमा-आंगन में हनुमान, गणेश, लक्ष्मी, धारा व कर्ण की पाषण मूर्तियाँ भी शोभायमान् हैं। मंदिर के पिछले भाग में लक्ष्मी मंदिर के पास ही भीममंडी है, जहाँ पर भगवान् का भोज (चावलों का भात) पकता है। इस के निकट ही एक कक्ष में शंकराचार्य जी की प्रसिद्ध गद्दी है।

माणा का आनोखा जन-जीवन

बद्रीनाथ में यात्रा के महीनों में यानी मई के मध्य से अक्तूबर के अन्त तक बड़ी चहल-पहल रहती है और बद्रीनाथ के दर्शनों

के लिए लगभग दो-ढाई लाख यात्री हर वर्ष यहाँ आते हैं जिनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। परन्तु सर्दी के अत्याधिक ठण्डे महीनों में जब सारी घाटी बर्फ से ढक जाती है तब बद्रीनाथ पुरी एकदम सूनी लगती है। फिर भी बद्रीनाथ के माणा गाँव का जन-जीवन सामान्य ही दिखाई देता है। वस्तुतः माणा भारत-तिब्बत सीमा का अंतिम गाँव है। यहाँ पर सेना की एक पोस्ट (चौकी) भी है। यह स्थान बद्रीनाथ के उत्तर में तीन किलोमीटर दूर, नर पर्वत की तलहटी में स्थित है। यहाँ पर अधिकांश मालछी जाति के भोटिए रहते हैं जो किरातों के वंशज बताए जाते हैं। नीति घाटी के लोगों की तरह यहाँ के लोग भी पहले तिब्बत में जाकर ऊन आदि का व्यापार करते थे किन्तु चीन के आक्रमण के बाद ऊन का व्यापार बन्द हो जाने से ये लोग अब खेती-बाड़ी, मुर्गी-पालन तथा भेड़-बकरियाँ चराने का काम करते हैं। इन कामों में यहाँ की स्त्रियाँ भी अपने पुरुषों का साथ देती हैं। भोटिए पुरुष अधिक मजबूत और हट्टे-कट्टे तथा स्त्रियाँ गौरवर्ण और सुन्दर होती हैं। माणा का उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थों में 'मणिभद्र पुर' के नाम से मिलता है। इसके उत्तर में बटिया के रास्ते में ४१ किलोमीटर दूर, ४, ६२० मीटर ऊँचा माणाधुरा है जहाँ से तिब्बत-स्थित थोलिंग मठ व कैलाश-मानसरोवर को मार्ग चला जाता है।

बद्रीनाथ में आकर अधिकांश यात्री बदरी विशाल के दर्शन के बाद ही अपनी यात्रा की इतिश्री समझते हैं और अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं। परन्तु हमें तो व्यास गुफा, वसुधारा, अलकापुरी और सतोपंथ को देखने की बहुत इच्छा थी। अतः पहले अलकनन्दा के हिम-से शीतल जल में और फिर तप्तकुंड के खौलते जल में स्नान से निवृत्त होकर तथा कुछ खा-पीकर २९ मई की प्रातः को हम इन देवरम्य स्थानों को देखने के लिए

रवाना हुए। उस समय मौसम साफ और सुनहली धूप दूर-दूर तक खिली हुई थी। बद्रीनाथ घाटी की समतल भूमि पर लगभग एक घन्टा तक चलने के बाद मातामूर्ति मंदिर से होकर तथा अलकनन्दा पर लटके हुए पुल को पारकर हम माणा गाँव की व्यास गुफा के पास आ गए। स्मरण रहे कि माणा गाँव से आगे जाने के लिए यात्रियों को जोशीमठ के न्यायाधीश से अनुज्ञा-पत्र प्राप्त करना होता है।

अनुपम साहित्य-तीर्थ

वास्तव में व्यास गुफा एक बहुत ही बड़ी एवं विशाल गिरि-कन्दरा है। इसको देखकर ऐसा लगता है जैसे पर्वत को काटकर प्रकृति ने स्वयं ही इसे बनाया है। अब किसी ने यहाँ पर पत्थरों की एक दीवार भो बना दी है। इसमें चार छेद हैं जिनमें ऊपर के तीन छेद रोशनो के लिए और नीचे का छेद प्रवेश के लिए। इस कन्दरा में आजकल भी कभो-कभी कुछ साधु-संयासी आते-जाते टिक जाते हैं। गाँव वाले भी ओले, वर्फ और हिमवर्षा को झड़ी में आश्रय लेने के लिए यहाँ आ जाते हैं। जब हम लोग वहाँ पहुंचे तब कोई न था। गुफा के संकरे द्वार से सिर झुकाकर हम भीतर गए, मानो हमने महर्षि व्यास जी को नत-मस्तक होकर प्रणाम किया हो। कन्दर के अन्दर पहले कुछ अन्धेरा लगा। टार्च जलाकर वहाँ फिर कुछ देर बैठ गए तो अन्धेरे की आदत पड़ गई और कुछ-कुछ धुंधला-सा दिखाई देने लगा। जैसे-जैसे गुफा अन्दर को गई उसकी छत ऊँची होती गई। एक स्थान पर किसी ने इसे पत्थर से पाट दिया है जिससे आगे जाना हमारे लिए मुश्किल हो गया। इसी महान् कन्दरा में बैठकर महर्षि व्यासजी ने महाभारत, श्रीमद् भगवत गीता, अठारह पुराण

आदि अमर वांगमय का सृजन किया था। अतः व्यास गुफा हमारे देश का एक अनुपम साहित्य-तीर्थ है जो अलकनन्दा और सरस्वती नदियों के संगम केशव प्रयाग के निकट ३, १६८ मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित है। इस कन्दरा के आसपास ही गणेश और राजा मचकुन्द की गुफाएं भी दर्शनीय हैं।

वसुधारा

वसुधारा प्रपात उत्तराखण्ड का सबसे अनूठा प्रपात माना जाता है। यह प्रपात बद्रीनाथ से आठ किलोमीटर दूर सागर की सतह से ३, ६०० मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। व्यास गुफा को देखने के बाद हम वहाँ भी गए। यह सारा रास्ता ऊबड़-खाबड़ और छोटे-बड़े पत्थरों से भरा पड़ा है जिनपर उस समय पिघली हुई बर्फ के तोतिया रंग के कई निशान चित्रित थे। इनको देखकर ऐसा लगता था, मानो उनपर प्रकृति ने अपनी तुलिका से पेंटिंग कर दी हो। इस प्रकार पत्थरों पर चलते-फिसलते और पग-पग आगे बढ़ाते हुए हम मध्याह्न दो बजे तक वसुधारा के विस्मयकारी प्रपात के निकट पहुँच गए।

इस प्रपात की विशेषता यह है कि यहाँ १२० मीटर की ऊँचाई से दूध-सी सफेद धाराएं हवा में उड़कर पृथ्वी पर इधर-उधर गिरती रहती हैं। अधिक ऊँचाई पर पानी और हवा के अनोखे मेल के कारण ही ऐसा होता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि ये धाराएँ मनुष्यों के ऊपर नहीं गिरतीं, पर यह ठीक नहीं है। वस्तुतः इस प्रपात के एक ओर गहरा-सकरा खड्ड है जो उस समय बर्फ से ढका पड़ा था। यद्यपि हमारे लिए प्रपात के निकट पहुँचना काफ़ी कठिन था फिर भी कुछ साहस बटोरकर और क़दम-कदम पर नुकीली बल्लम सहित छड़ी की मदद

से आगे बढ़ते हुए हम उसके दूसरे छोर तक पहुंच गए, जहाँ से खास प्रपात तक पहुँचना हमारे लिए खतरे से खाली न था।

वसुधारा से आगे नर और नारायण पर्वतों के कोण एक-दूसरे से परस्पर जुड़े हुए दिखाई देते हैं। अधिक ऊँचाई के कारण यह सारा क्षेत्र वर्षा ऋतु को छोड़कर वर्ष भर बर्फ से ढका रहता है। इसी मार्ग में ४,३२० मीटर को ऊँचाई पर स्थित सतोपन्थ नाम का एक अत्यन्त ही स्वच्छ त्रिकोणाकार सरोवर है जिसका हर कोण चार सौ मीटर के लगभग लम्बा है। इससे कुछ ही आगे सोनकुँड व विष्णुकुँड हैं। वसुधारा और सतोपन्थ के बीच लक्ष्मीवन के समीप ही अलकापुरी है, जहाँ पर सतोपन्थ व भागीरथी खड़क नाम के दो ग्लेशयरि मिलते हैं। बस, अलकनन्दा का उद्‌गम भी यही है। सतोपन्थ सरोवर के पश्चिम में चौखम्भा शिखर तथा गंगोत्री ग्लेशियर हैं।

अलकनन्दा का संदेश

अलकनन्दा की पुण्य उद्‌गमस्थली अलकापुरी को देखने की इच्छा से हम वसुधारा की उस हिममंडित खड्ड से नीचे उतरकर अलकनन्दा के साथ-साथ चल दिए। मुश्किल ही हम थोड़ी दूर गए होंगे कि हमें नदी के ऊपर बर्फ का एक बड़ा-सा पुल नजर आया जिसका कोई ओर-छोर न था। वास्तव में बर्फ के इन पुलों को कोई बनाता नहीं है, बल्कि प्रकृति द्वारा ये स्वयं बनते-पिघलते रहते हैं। इनमें सबसे अनोखापन यह है कि ये बिना किसी स्तम्भ के होते हैं जिसके नीचे से नदी का जल निर्विघन बहता रहता है। धूप में बर्फ के पिघलने से इनमें कई बार छोटे-छोटे सुराख हो जाते हैं जिससे यात्री को बड़ा सजग होकर चलना पड़ता है। यद्यपि इन पुलों की बर्फ संगमरमर की तरह सख्त

होती है फिर भी यात्रियों को इन्हें सुबह अथवा शाम को पार कर लेना चाहिए ।

प्रकृति द्वारा निर्मित बर्फ के इस पुल के नीचे से छल-छल करती अलकनन्दा मानो अपने मूक स्वरों में हमें संदेश दे रही थी—न जाने मानव क्यों नगरों के कृत्रिम वातावरण, सांसारिक प्रपंचों एवं पारिवारिक उलझनों में फंसा-जकड़ा रहता है जबकि मां प्रकृति ने इस विशाल घाटी में व्यास गुफा, वसुधारा, अलकापुरी, सतोपन्थ, चरणपादुका, शेषनेत्र जैसे अति सुन्दर और अति महान् उपहार प्रस्तुत कर रखे हैं जिसके देखे बिना वह जीवन में प्रकृति और उसके सृष्टा की अद्भुत अलौकिक कारीगरी से वंचित रह जाता है जो उसके संतोषी, सुखी एवं परमार्थी जीवन के लिए बड़ा प्रेरक है ।

६

सौम्य परिवेश में इठलाता नन्दन कानन

□□

फूलों की घाटी के नाम से सुप्रसिद्ध नन्दन कानन अपने बहुरंगी पुष्प-वैभव के लिए विश्व-विख्यात है। मुकुटमणि हिमालय की यह सुरम्य घाटी समुद्र के तल से २,४०० मीटर की ऊँचाई पर कामेत पर्वत के नीचे कई किलोमीटरों दूर तक फैली हुई है। इसको देखने का सबसे उत्तम मौसम जून से सितम्बर तक का है, क्योंकि इन महीनों में प्रकृतिरानी यहाँ हिम की अपनी दुधिया ओढ़नी उतार कर नाना प्रकार के अल्पाइन फूलों का रंग-बिरंगा दोशाला ओढ़ लेती है। साथ ही, जुलाई मास में बुरांस के पुष्प सम्पूर्ण घाटी में आस्तरण की तरह फैल जाते हैं।

यहाँ पहुँचने के लिए यात्री को पहले बद्रीनाथ राजमार्ग पर स्थित गोविन्द घाट तक बस अथवा जीप में आना पड़ता है और फिर वहाँ से करीब १९ किलोमीटर की दुर्गम पर्वतीय यात्रा पैदल अथवा टट्टू पर करनी पड़ती है। प्रकृति की इस आकर्षक रंगस्थली से प्रभावित होकर १६ जून को हम बद्रीनाथ से लौटते समय रास्ते में गोविन्द घाट में रुक गए।

गोविन्द घाट

यह घाट गुरु गोविन्द सिंह जी के नाम पर बना है। वैसे तो यह जगह एक छोटा-सा पहाड़ी स्थल है, पर सिक्खों के तीर्थ लोकपाल हेमकुंड और नन्दन कानन को यात्रियों का पड़ाव होने के

कारण इसका विशेष महत्व है। इसके दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे वनस्पतिहीन पर्वत खड़े हैं और बीच में अलकनन्दा की द्रुत धारा विद्युत गति से बह रही है। नदी पर आने-जाने के लिए एक छोटा-सा पुल भी है। पुल के निकट ही खास घाट पर यात्रियों की सुविधा के लिए एक बड़ा-सा खूबसूरत गुरुद्वारा बना हुआ है जिसमें निवास, भोजन आदि की समुचित व्यवस्था है। रात गुरुद्वारे में व्यतीतकर हमने अगले दिन अर्थात् १७ जून को सूरज की पहली किरण के साथ ही नन्दन वन के लिए घांगरिया की ओर प्रस्थान किया।

बादलों का अभिनय

घांगरिया म्यूँदार नदी और हेम गंगा के संगम पर प्रकृति का एक रमणीक स्थान है जो गोविन्द घाट से तेरह किलोमीटर दूर है और समुद्र की सतह से कोई ३,००० मीटर ऊँचा है जिससे वहाँ तक का सारा रास्ता कठिन चढ़ाई के साथ-साथ एक पर्वत से दूसरे पर्वत के अगल-बगल में से होकर जाता है। गोविन्द घाट से चलकर जब हम भुन्ढयार पहुँचे ही थे तभी मौसम बदलने लगा और सुनहली धूप की जगह हल्के-हल्के काले-श्यामल बादलों ने हमारे चारों ओर अपना डेरा आ डाला। ऊँचे पहाड़ों में बरसात के मौसम में आसमान जब बादलों से भरा होता है तब दूर तक बादल कौन-से हैं और शिखर कौन-से हैं, यह पहचानना मुश्किल हो जाता है। बादलों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ तो गिरिराज की देह पर नित्य खेलती रहती हैं।

हमारे देखते-ही-देखते सारी घाटी कुहासे के आवरण में लुक-छिप गई। पर्वत-शिखरों पर काले-श्यामल बादल इस तरह मँडरा रहे थे जैसे मस्त हाथियों का कोई दल इठलाता हुआ

चला जा रहा हो। मेघों के विशाल समूह में चलते हुए एक जगह हमें संकीर्ण खड्ड में इन्द्रराज अपना सतरंगी धनुष ताने खड़े मिले। प्रकृति का वह दृश्य सचमुच ही बड़ा मनोमुग्धकारी था। इस तरह मेघों के अभूतपूर्व अभिनय को देखते-निहारते हुए हम रात्रि-विश्राम के लिए घांगरिया के डाक बंगले जाकर रुके।

घांगरिया

वस्तुतः घांगरिया एक हरी-भरी छोटी-सी चरागाह है। यहाँ की छोटी-छोटी मखमली घास मन को एकदम मोह लेती है। गोविन्द घाट की भाँति यहाँ पर भी यात्रियों के ठहरने के लिए एक गुरुद्वारा है। इससे आगे दो मार्ग जाते हैं, एक लोकपाल हेमकुँड को और दूसरा नन्दन कानन को, जो दोनों ही पाँच-छः किलोमीटर दूर हैं। लोकपाल हेमकुँड सिक्खों का तीर्थ स्थान है जो स्यूँडार ग्लेशियर के निकट एक छोटे-से मैदान में है। जनश्रुति के अनुसार सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह जी ने यहाँ पर तप किया था जिसके फलस्वरूप उन्होंने दूसरे जन्म में 'खालसा' पन्त चलाया। हेमकुँड की ऊँचाई ४,२६० मीटर है। इसका सरोवर अंडाकार है जो तीन ओर से ऊँचे गिरि-प्रपातों से घिरा हुआ है जिससे निकली हुई धाराओं के द्वारा यह अद्भुत सरोवर परि-पूरित होता रहता है। इसके एक कोने से हेम गंगा प्रवाहित होती है जिसे लक्ष्मण गंगा भी कहते हैं। इस प्रकार लोकपाल हेमकुँड सिक्खों तथा हिन्दुओं का समान रूप से तीर्थ स्थान है। हेम गंगा के तट पर एक स्थान पर लक्ष्मण जी का एक प्राचीन मंदिर भी है। कहा जाता है कि यहाँ पर लक्ष्मण ने तपस्या की थी। आजकल हेमकुँड में एक नक्षत्र वेधशाला भी स्थापित की गई है।

सतरंगी घाटी की ओर

घांगरिया में दो दिन रुककर २० जून की प्रातः को जब हम उठे तो मौसम साफ और यात्रा के लिए उपयुक्त था। सुबह का नाश्ता करके ठीक आठ बजे हम नन्दन कानन की सतरंगी घाटी की ओर चल पड़े। सारा रास्ता ऊबड़-खाबड़ होने के कारण थका देने वाला था परन्तु मंजिल के पास पहुँचते हुए हमारे थके-हारे कदम भी बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़ते जा रहे थे, मानो हमारे मन रूपी चाबुक से पाँव रूपी घोड़े सरपट भागे जा रहे हों। अन्त में दो घण्टे की कठिन यात्रा के बाद स्यूँडार नदी पर बने एक कच्चे पुल को पारकर सहसा हमने असंख्य पुष्पों से सजी-धजी घाटी में प्रवेश किया। सभ्य जगत् से दूर प्रकृति की इस रंग-बिरंगी घाटी में पहुँचकर मेरे जैसे दर्शक को उस समय न कुछ पाने की इच्छा थी और न ही कुछ देने की। बस, जी चाहता था कि प्रकृति के सभी रंगों और सुगन्धों से भरपूर नन्दन कानन के रूप और रस का पान करते रहें। सचमुच, यह सतरंगी घाटी यदि एक ओर प्रकृति-प्रिय घुमक्कड़ों के लिए एक महान् आकर्षण है तो दूसरी ओर उनकी लम्बी श्रमसाध्य कठिन यात्रा के लिए समुचित प्रतिफल देती है और साथ ही यहाँ का सौम्य परिवेश में इठलाता शांतमय वातावरण उन्हें आतम-विभोर कर देता है।

रंगीन उपत्यका में

इस रंगीन उपत्यका का चमत्कार यहाँ के नाना प्रकार के फूलों और इन्द्रधनुषी रंगों में है जिसकी सुन्दरता और सुगन्ध की कोई तुलना नहीं। यहाँ के कुछ फूलों की गन्ध तो इतनी मादक होती है कि आदमी बेहोश तक हो जाता है। कहते हैं कि

संसार के किसी स्थान में इतने विविध रूप, रंग और गन्ध के फूल नहीं होते। प्रकृति का कमाल यह है कि यहाँ एक ही पौधे की भिन्न-भिन्न टहनियों पर रंग-बिरंगे और विविध गन्ध वाले फूल हमें देखने को मिले। जातियों में जंगली गुलाब, ब्रह्म कमल, सूर्य कमल, शिटई, दहलिया, गेंदा, बटर कप, नर्गिस जैसे लगभग तीन हजार किस्मों के पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्ध से घाटी का कोना-कोना महक रहा था। इसके साथ ही, फूलों के चारों ओर चक्कर काटती हुई विविध रंगों वाली तितलियां एक अत्यन्त ही मनोरम एवं सजीव दृश्य उपस्थित कर रही थीं।

वास्तव में हमारे चारों ओर इन्द्रधनुष के सभी रंग बिखरे पड़े थे, होली जैसा और शाश्वत सुख का वातावरण छाया हुआ था। विभिन्न रंगों की रंग-बिरंगी दुनिया में डूबा हुआ मेरा मन-मयूर कविवर सुमित्रा नन्दन पंत की इन पंक्तियों को गुन-गुनाता हुआ आगे बढ़ता गया—

"आज रंगो फिर जन-जन का मन
रंगो पुनः भारत का यौवन
नवल होलिके, नव शोभा से
नव पल्लव से रंगो दिगांचल,
रंगो सकल गृह के वातायन,
रंगो प्रीति से घृणा द्वेष रण
नव प्रीति से कटुता से क्षण,
जीवन सुन्दरता के रंग से
पकिल हो जन-भू का प्रांगण।"

वन-फूलों का आकर्षण

वन-फूलों की बहुरंगी सुषमा के साथ-साथ उनमें एक

विचित्र प्रकार का आकर्षण भी था जिससे वशीभूत होकर हम बार-बार उनके पास रुकते और कुछ क्षणों तक उनकी कोमल भाषा में बातचीत करके आगे बढ़ जाते। पर्वतीय हिमानी वायु के धीमे प्रवाह में रस-विभोर होकर जब कभी वे हँसते-डोलते, नाचते-लहराते तब ऐसा लगता था, मानो वे हमें हँसी-खुशी का पाठ पढ़ा रहे हों। ज्यों ही उनमें से किसी सुमन को हम तोड़ने के लिए अपना हाथ पसारते तभी हमारे नेत्रों के सामने विश्वकवि टैगोर के शब्द चलचित्र की भाँति साकार हो उठते—"फूल चुन कर इकट्ठा करने के लिए न रुको बल्कि आगे बढ़ते चलो। तुम्हारे पथ में निरन्तर फूल खिलेंगे।" और तभी चुपचाप फूलों को निहारते हुए हम आगे बढ़ते गए।

घाटी का गौरव

यद्यपि फूलों की इस घाटी का उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थों में नन्दन कानन अथवा नन्दन वन के नामों से मिलता है फिर भी इसकी खोज का श्रेय एफ० एस० स्माइथ नामक एक अंग्रेज पर्वतारोही को प्राप्त है जो सन् १९३१ में अपने दल के साथ हिमालय के कामेत पर्वत पर आरोहण करने के लिए गया था। लौटते समय वह यहाँ के कुछ फूल अपने साथ ले गया। 'सन् १९३७ में स्माइथ फिर यहाँ एडिन्वर्ग बुटेनिकल गार्डन की ओर से आया और लगभग तीन महीने रहकर यहाँ के करीब ढाई सौ प्रकार के फूलों के बीजों को विदेश ले गया। उन बीजों को वहाँ उगाया गया। रंग और रूप में तो वहाँ उसी प्रकार के फूल निकले जैसे इस घाटी में होते हैं, किन्तु गन्ध उसकी गायब हो गई जो सम्भवतः यहाँ की जलवायु की देन थी। 'वैली आफ फ्लावर्स' में फूलों भरी इस उपत्यका के सौन्दर्य का उल्लेख करते

हुए स्माइथ ने लिखा है—"अपने जीवन में इससे मनोहर उपत्यका हममें से किसी ने नहीं देखी। हमारे स्मृतिकोश में पुष्पों की यह उपत्यका सदैव सुरक्षित रहेगी।" इसके दो वर्ष बाद इन फूलों के रूप-रंग पर ही मुग्ध ओकर बुटेनिकल गार्डन लन्दन की ओर से कुमारी जोन लैग फिर यहाँ इन फूलों के बीजों को एकत्रित करने के लिए आई। दैवयोग से फूलों को तोड़ते हुए वह एक खड्ड में गिर पड़ी और सदा के लिए इस अद्‌भुत पुष्पशैया पर चिरनिद्रा में सो गई। घाटी के अन्ताखल दर्रे के पास इस पाश्चात्य वीरांगना महिला की स्मृति के रूप में बनी एक स्माधि है। वस्तुत: पुष्पों की यह रंग-भरी घाटी एक स्वप्निल स्थली है जो रतवनर ग्लेशियर पर स्माप्त होती है, जहाँ से म्यूँडार नदी का निकास होता है। इस घाटी के बीचोबीच कल-कल करता कामेत झरना भी बहता है। स्थानीय लोग इसे वामनीधार या कुण्डिला सेम कहते हैं। यहाँ पर पर्यटकों के विश्राम हेतू सरकार की ओर से एक डाक बंगला भी बना हुआ है।

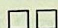
नन्दन कानन की यात्रा से लौटे मुझे कई मास बीत गए हैं, परन्तु न जाने क्यों आज भी जब कभी मैं अपनी गृह-वाटिका में खिले हुए फूलों की ओर देखता हूँ, तब वहाँ की अनुपम सतरंगी शोभा मेरी आँखों के सामने एकदम घूमने लगती है और मैं प्रकृति के महान् कवि वर्डस्वर्थ की सुप्रसिद्ध कविता 'डैफोडिल्स' की पंक्तियों को दोहराने लगता हूँ जिसका सारांश इस प्रकार है—

"मैं अकेला घूम रहा था, जैसे बादल पर्वत-चोटियों और घाटियों में मस्ती से घमते हैं। तभी अचानक मैंने नर्गिस के फूलों का एक समूह देखा। एक झील के पास, वृक्षों के नीचे वे फूल हवा के झोंकों से लहरा रहे थे और नाच रहे थे। झील के किनारे लम्बी पंक्ति में फूल बहुत दूर तक फैले हुए थे, जैसे आकाश गंगा

के मार्ग में असंख्य तारे चमकते हैं। मैं एक ही दृष्टि में हजारों फूल देख सकता था जो मस्ती से नाचते हुए अपना सिर हिला रहे थे। इन फूलों के पास ही झील की तरंगें नाच रही थीं, परन्तु फूलों के नाच ने तरंगों के नाच को हरा दिया था। ऐसे सुन्दर दृश्यों को देखकर कवि प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता। बिना विचार ही उसकी सुन्दरता से मोहित होकर मैंने उन्हें बार-बार देखा, न जाने कौन-सी कल्पनाओं की सम्पत्ति उन्होंने मुझे दी थी, क्योंकि अक्सर जब मैं भावपूर्ण या भावरहित होकर अपनी शैया पर लेटता हूँ तो वे फूल मेरी आन्तरिक दृष्टि के सामने चमक उठते हैं। मेरा हृदय प्रसन्नता से भर जाता है और पीले नर्गिस के फूलों के साथ नाच उठता है।"

७

पिन्डारी ग्लेशियर के सुरम्य पथ पर



गढ़वाल की भांति कुमाऊँ (कूर्मांचल) भी प्रकृति का एक रमणीय क्रीडांगन है। यहाँ पर जहाँ भी जाओ, इसके धवल शिखर, शान्त सरोवर, हरे ताल, लहलहाते खेत और मेवों से लदे पेड़ों का प्राकृतिक सौन्दर्य अपना उत्कृष्ट वैभव लिए चारों तरफ हँसता-खिलता हुआ दृष्टिगोचर होता है। नैनीताल, रानीखेत, अल्मोड़ा आदि नगर इसके ग्रीष्मावास हैं ही, पर इनके अलावा पर्वतसम्राट् हिमालय के बीच वाले हिमश्रृंगों में पिन्डारी ग्लेशियर की सुन्दरता एकदम अतुलनीय है, एकदम अद्वितीय है।

वहाँ जाने के लिए आजकल दो मार्ग हैं। एक मार्ग काठगोदाम से होकर जाता है और दूसरा कर्ण प्रयाग से, जो दोनों अल्मोड़ा में जा मिलते हैं। गढ़वाल से कुमाऊँ जाने वाले पर्यटकों के लिए दूसरा मार्ग ही अधिक सरल एवं उपयुक्त है। अतः नन्दन कानन से लौटते वक्त हम कर्ण प्रयाग से होकर अल्मोड़ा पहुँचे।

पर्वत-शिशु

अल्मोड़ा के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे हिममंडित पर्वत खड़े हैं जिससे इसे हम पर्वत-शिशु भी कह सकते हैं। समुद्र की सतह से इसकी ऊँचाई १,५६० मीटर है। यहाँ के निकटवर्ती दर्शनीय स्थानों में सिलौली, कालीमठ, बिन्सर, चम्पावत और कौसानी

हैं। अपने अल्मोड़ा-प्रवास में वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य से ही विमुग्ध होकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने लिखा है—"हिमालय के आकर्षक सौन्दर्य और अनुकूल जलवायु से दर्शक आनन्दमग्न हो जाता है और उसकी कोई कामना शेष नहीं रह जाती। इस पर्वतीय प्रदेश का प्राकृतिक सौन्दर्य और जलवायु विश्व के सौन्दर्य स्थलों में सर्वोत्कृष्ट है।"

यहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य के अतिरिक्त अल्मोड़ा को कुमाऊँ के चन्दवंशी राजाओं की राजधानी होने का गौरव भी प्राप्त है। नन्दाष्टमी यहाँ का एक विशेष त्यौहार है जो भाद्रपद में पड़ता है और मैदानों में राधाष्टमी के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन नन्दा देवी की पूजा करके इसका डोला यानी रथ निकाला जाता है। गोल दायरे में इकट्ठे हुए लोगों से हुड़के की ताल पर लोक-गीतों की धुनें उठती हैं और बरबस अपने में सभी कुछ समेट लेती हैं। इस मेले का मुख्य आकर्षण है—केले के पेड़ से बनाई गई नन्दा देवी की भव्य मूर्ति। वस्तुतः नन्दाकोट पर्वतशिखर कुमाऊँ के सभी स्थानों से दिखाई देता है। इसको आधार मान कर शायद नन्दा देवी के इस मेले का आयोजन किया जाता है। कुमाऊँ के सभी भागों के लोग अल्मोड़ा में इसको देखने के लिए आए रहते हैं। अल्मोड़ा में नन्दाष्टमी के दिन कुमाऊँ के प्राचीन राजवंश के लोग आते हैं और इस मेले का उद्घाटन भी प्रायः उन्हीं के द्वारा होता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि नन्दा और उसकी बहन इसी राजवंश की कन्याएं थीं। कुमाऊँ के साँस्कृतिक जीवन की यदि एक झलक देखनी हो, तो अल्मोड़ा के नन्दाष्टमी के मेले के दिन उसे सुविधा से देखा जा सकता है। इस त्यौहार के अवसर पर किसी समय राजा के द्वारा बलिष्ट भैंसे की बलि देने का भी विशेष महत्व रहा है।

अल्मोड़ा से कपकोट

अल्मोड़ा में नन्दाष्टमी के मेले को देखने के बाद हम अगले दिन सुबह ही बस में बैठकर पिन्डारी ग्लेशियर की ओर कपकोट के लिए रवाना हुए। अल्मोड़ा से चलकर कुछ देर के लिए हमारी बस बागेश्वर में रुकी। अल्मोड़ा से बागेश्वर पचास किलोमीटर दूर है और सघन खेती के लिए सारे कुमाऊँ में प्रसिद्ध है। यहाँ पर घाटी का विस्तार बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है जिसमें एक पहाड़ी नदी भी बहती है। इस घाटी से गुजरते हुए हमें जगह-जगह नदी के आसपास की ढलानदार पहाड़ियों में छोटे-छोटे, हरे-भरे सीढ़ी की तरह उठते खेत देखने को मिले। इसके साथ ही, पत्थरों के ऊपर से प्रवाहित होने वाली उस पहाड़ी सरिता को देखकर ऐसा लगता था, मानो वह अपनी कल-कल ध्वनि में प्रकृति की स्तुति में निरन्तर कोई मधुर गीत गा रही हो।

बागेश्वर से आगे पर्वतों के ऊपर-नीचे होती हुई हमारी बस अपराह्न तक कपकोट में जाकर खड़ी हो गई। वहाँ से आगे का सारा-का-सारा पैदल पथ खड़ी चढ़ाई के साथ-साथ बड़ा उबड़-खाबड़ और पहाड़ों को काँट-छाँट कर बनाया गया है। इस पथ के रूप में वहां सिर्फ एक छोटी-सी सर्पाकार पगडंडी ही थी जिसके किनारे पर बसे लोहाफट, ठाकुरी और खाती जैसे रमणीय स्थल गन्धर्व बस्तियों-से लग रहे थे। खाती में रात विश्राम कर हम अगले दिन तड़के ही द्वाली की ओर बढ़े। इस सुरम्य पथ पर चलते हुए एक पर्वतशिखर पर पहुँच सहसा उषावतरण के सुहावने रूप को देखकर हम स्तम्भित रह गए। उस समय उषारानी धीरे-धीरे घाटी में उतर रही थी, हंसती-मुस्कराती जिसकी कलाइयों पर हिमकँगन बँधे थे और पाँव में बर्फीले नूपर। वह अपने लाल-लाल कपोलों को नभाँचल में छिपाती आहिस्ता-

आहिस्ता घाटी में आ रही थी। उसके आगमन पर गिरिराज की धवल जटाओं पर अबीर की लाली बरसने लगी और कुछ ही देर में समस्त घाटी उसके अलौकिक प्रकाश में नहा उठी।

रंगीन पर्वत

द्वाली और फुरकी के बीच का पाँच किलोमिटर लम्बा यह पथ उस समय रंगीन पर्वतों से भरा पड़ा था। प्रकृति के उद्यान में छोटे-छोटे लता-गुल्म और जहाँ-तहाँ फैले हुए रंग-बिरंगे फूल मार्ग की शोभा को चार चाँद लगा रहे थे। उनमें से कुछ जंगली विषैले फूल भी थे जिनका कटु अनुभव मुझे एक बार सन् १९५८ में अपनी कश्मीर-यात्रा में हुआ था। वह इस प्रकार है—

"पुल को पार करते ही मार्ग के दोनों ओर दूर-दूर तक नीले-पीले, लाल-गुलाबी, केसरी-सफेद रंग के अनगनित पुष्प खिले हुए थे। अगस्त और सितम्बर के महीनों में जब प्रकृति हिम की ओढ़नी उतार फैंकती है तब धरती में से छोटे-छोटे रंग-बिरंगे फूल निकल आते हैं। वहाँ पर एक-से-एक सुन्दर फूल शोभायमान था। प्रकृति रंग-बिरंगी दोशाला ओढ़े अपनी शोभा-सुषमा से रिझाने के लिए बहुत ही आकर्षक प्रतीत हो रही थी। परन्तु पर्वत का रूप धारण किए हुए देवगण प्रकृति के इस माया जाल में न फँसकर निःस्वार्थ, निर्लेप, शान्तचित्त एवं मौन तपस्या में तल्लीन खड़े थे। प्रकृति के इस लावण्य सौन्दर्य को निहारते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। वहाँ के फूलों में कुछ विषैले जंगली फूल भी थे। रंग नीला, बिल्कुल मोर की गर्दन के समान। मैं इन्हें देखकर मोहित-सा हो गया और झट से दो-तीन फूलों को तोड़कर कोट पर लगा लिया। मुश्किल से दस-बीस ही कदम चला हूँगा कि सिर चकराने लगा और पाँव लड़खड़ाने लगे। उस

समय मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने पाँव की शक्ति छीन ली हो। यह मुझे मालूम न था कि ये विषैले फूल हैं। मेरे लिए यात्रा का यह एक नया ही अनुभव था। उस समय मैं सोच भी न सका कि मुझे क्या होता जा रहा है। साथ चलते हुए एक टट्टू वाला मेरी यह दुर्दशा देखकर तुरन्त मेरे पास आया। उसने उन फूलों को बड़ी शीघ्रता से उतारकर दूर खाई में फेंक दिया। तब उसने मुझे बताया कि यह इनका ही प्रभाव था।"

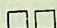
अपूर्व सुषमा

आगे का मार्ग अत्यन्त दुर्गम एवं थका देने वाला है जिससे हमें पग-पग पर साँस लेने के लिए रुकना पड़ता था। पर ऊपर पहुँचकर हमारे मन में जो प्रसन्नता हुई वह बताई नहीं जा सकती। सामने ही पिन्डारी ग्लेशियर का भव्य दृश्य आँखों को विमुग्ध किए हुए था। ग्लेशियर को हिन्दी में हिमानी, हिमनद, हिम-सरिता अथवा बर्फ की नदी कहते हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर बर्फ के निरन्तर गिरते रहने से उसके दबाव के कारण पहाड़ का निचला हिस्सा कभी-कभी ऊपर उठता हुआ बाहर की ओर निकलने लगता है। बच्चे जिस तरह बालू के टीले बनाते हैं और एक ऊँचाई पाने पर बालू का बना टीला स्वयं ढह जाता है। ठीक वैसे ही बर्फ की यह चट्टान ढहती है। यह ढहकर वहीं नहीं पड़ी रहती वरन् धीरे-धीरे रेंगती व फिसलती हुई नीचे की ओर सरकती हुई चली जाती है। कभी-कभी इसके सरकने-फिसलने से एक गड़गड़ाहट की आवाज़ होती है जो चारों तरफ फैलती हुई गुरुतर होती जाती है और अन्त में बहुत दूर जाकर क्षीण होते-होते नीरवता में खो जाती है। बर्फ के इस खण्ड को ही 'ग्लेशियर' कहते हैं।

पिन्डारी ग्लेशियर कुमाऊँ में नन्दादेवी और नन्दाकोट की हिम-शृंखलाओं में ३,६२७ मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इसकी लम्बाई लगभग तीन किलोमीटर और चौड़ाई तीन-साढ़े तीन सौ मीटर के करीब है। वस्तुतः यह सारा क्षेत्र हिम की अनगनित बुर्जियों, अट्टारियों, स्तम्भों व त्रिकोण स्तूपों के विशाल समूह से भरा पड़ा प्रतीत होता है। चारों ओर हिम-शिलाओं का एक जमघट-सा दिखता है। जगह-जगह पर छोटी-छोटी बर्फ की कई गुफाएँ बनी हुई हैं जिनमें कुछ तो दस-पन्द्रह मीटर तक लम्बी हैं। इन्हीं गुफाओं में पिन्डार नदी का उद्भव होता है जो बाद में कर्ण प्रयाग पर अलकनन्दा में जा मिलती है। नगाधिराज हिमालय के विशाल हिमसमूह के बीच पिन्डारी ग्लेशियर का यह सुरम्य स्थान अपनी अपूर्व सुषमा के कारण सारे विश्व में विख्यात है।

८

झीलों की धरती कूर्माँचल



पिन्डारी ग्लेशियर से लौटकर हम कुछ दिन तक नैनीताल में ही रहे और वहाँ की निकटवर्ती झीलों को देखते-निहारते रहे। वस्तुतः नैनीताल कूर्माँचल की सबसे बड़ी एवं रम्य नगरी है। यहाँ का प्रमुख आकर्षण नैनी झील है जो अपनी अनूठी सुन्दरता के कारण देश भर में प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त कूर्माँचल में और भी कई झीलें हैं जिससे इसे 'झीलों की धरती' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

नैनीताल

सचमुच, नैनीताल की सुन्दरता देखते ही बनती है। तीन ओर बाँज के घने वृक्षों से आच्छादित ऊँची-नीची पहाड़ियों की गोद में लिपटी हुई यह झील सिन्धु की सतह से १,९०५ मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इसकी लम्बाई १,३५० मीटर और चौड़ाई ४५० मीटर है। रंग गहरा हरा है जिसमें वृक्षों की झूमती-इठलाती डालियों की छाया और क्षण-क्षण में बदलने वाले व्योममंडल का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। सन्ध्या होते ही झील के चारों तरफ की रंग-बिरंगी झिलमिलाती बिजली की रोशनी, जल में विहार करती बत्तखों के झुण्ड तथा हवा में थिरकती लहरों पर मटकती-तैरती पाल-नौकाओं को देखकर ऐसा लगता है, जैसे यह कोई जादू की नगरी है।

झील के दोनों ओर अलग-अलग बाजार हैं। इसका ऊपरी भाग मल्लीताल और निचला भाग तल्लीताल कहलाता है। तल्लीताल से मल्लीताल का रास्ता दोनों ओर से सड़कों द्वारा मिला हुआ है। फ्लैट्स का खुला मैदान मल्लीताल में है। शाम होते ही यह मैदान देश के विभिन्न भागों से आए सैलानियों से भर जाता है। ग्रीष्म ऋतु तथा शरद् उत्सव के दिनों में यहाँ पर बड़ी चहल-पहल और रौनक रहती है तथा यहाँ नित्य नए-नए खेल-तमाशे जुड़ते हैं। शाम के सुहावने समय में बैंड की मधुर फिल्मी-धुनों के बजने से सारा वातावरण हँसता-गाता प्रतीत होता है। नैनादेवी का प्राचीन मंदिर भी इसी मैदान की पृष्ठ-भूमि में है जिसके नाम पर ही इस नगरी का नामकरण हुआ।

नैना पीक

नैनीताल की सारी बस्ती नैनी झील के आसपास बसी हुई है। इसके उत्तर में झील की ओर तनिक झुकी-सी नैना पीक है जो कुछ समय पहले चाइना पीक के नाम से प्रसिद्ध थी। यहाँ की ऊँचाई २, ५६८ मीटर है। इसके चक्करदार मार्ग पर चढ़ते हुए यात्री थका-थका सा रहता है पर चोटी पर पहुँचते ही देवरम्य हिमालय की १३० मीटर लम्बी हिममंडित शिखरावली की भव्य दृश्यावली को देखकर उसका मन खुशी से झूम उठता है जिसमें नन्दादेवी, नन्दाकोट, त्रिशूल, केदारनाथ, बद्रीनाथ आदि विश्व-विख्यात शिखर हैं।

नैना पीक पर अधिक ऊँचाई के कारण मौसम प्रायः खराब रहता है जिससे हिमालय की इस विशाल दृश्यावली का भव्य दर्शन हर समय नहीं हो पाता। इस लिए चोटी के पार्श्व में सफेद रंग की एक झंडी हवा में लहराती हुई दिखाई देती है। इसको

देखने के लिए दर्शक सुबह उठते ही इसकी प्रतीक्षा करते हैं। नैना पीक पर पहुँकर आप नैनीताल शहर का कोई भी कोना सुविधा से ढूँढ़ सकते हैं—ढलवां छतों वाले बंगले, इठलाती हुई मोटर रोड, मनभाते होटल आदि। वहाँ से नैनी झील को देखकर ऐसा लगता है, मानो वह अपने ऊपर हरा आवरण लेकर सो रही हो। इसके साथ ही, यहाँ से डोराथी सीट या टिफिन टाप, किल-बरी, लड़िया कांटा, आयर पट्टा, शेर का डंडा, स्नोव्यू तथा लैंडएंडस नामक चोटियों की विहंगम दृश्यावली भी दर्शनीय है।

वास्तव में नैनीताल उत्तर प्रदेश का सबसे प्रमुख एवं महत्व-पूर्ण ग्रीष्मावास है। इसकी खोज सबसे पहले सन् १८३९ में कुमाऊँ के कमिश्नर बैटन ने की थी जो हल्द्वानी से शिकार खेलने के लिए भीमताल से लौटते हुए सहसा यहाँ आ पहुँचा। श्री बैरन जो उस समय उसके साथ था अपने एक लेख में लिखा है—"मुझे यह स्थान अपनी सम्पूर्ण पन्द्रह सौ मील लम्बी हिमालय यात्रा में सर्वोत्तम लगा है।" श्री बैटन भी कूर्मांचल की सुन्दरता के बड़े प्रशंसक थे जिनके शब्दों में—"प्रकृति अपनी विशालता में यहाँ अत्यन्य प्रियदर्शिनी हो उठी है। यहाँ हर खुली जगह में स्विट्जरलैंड जैसे गाँव मिलते हैं जिनके चारों तरफ देवदार के वृक्ष तथा ऊपर विशाल शैल और उनके शीर्षस्थान पर चमकती हुई हिमराशि की सीमा तक हरे-भरे जँगल दिखाई पड़ते हैं।"

नैनीताल क्षेत्र का उल्लेख स्कन्द पुराण में भी मिलता है जिसमें वर्णित एक किंवदन्ती के अनुसार एक बार तीन ऋषि घूमते-फिरते हुए नैनीताल घाटी में तपस्या करने आए। यहाँ की नैसर्गिक शोभा को देखकर वे मुग्ध हो उठे, पर पानी के अभाव में वे अधिक समय तक यहाँ टिक नहीं सकते थे। अतः अपनी तपस्या के बल पर उन्होंने इस क्षेत्र में सात अतल छिद्र किए। इससे नैनीताल क्षेत्र में सात सरोवरों का निर्माण हुआ जिसका

जिक्र सन् १,९०५ के कमाऊँ गजटियर में भी हुआ है। परन्तु वैज्ञानिकों के मतानुसार कूर्मांचल के ये ताल ज्वाला-मुखियों के क्रेटर अर्थात् मुख हैं जो हजारों वर्ष पहले अपना ताण्डव-नृत्य करके आज शान्ति की नींद सो गये हैं। कालान्तर में इन गड्ढों में पानी भर गया और धीरे-धीरे इन गड्ढों ने झीलों का रूप धारण कर लिया।

खुरपाताल

नैनीताल में नैनी झील के अतिरिक्त एक और ताल भी है जिसे खुरपाताल कहते हैं। यह ताल बस्ती से पाँच किलोमीटर दूर है। तीन ओर से पहाड़ियों की जड़ से लगी हुई इस झील को देखकर ऐसा लगता है, जैसे प्रकृति ने स्वयं ही इसे बनाया है। नैनी झील की भाँति इसका रंग भी गहरा हरा है और इसमें छोटी-छोटी मछलियाँ प्रचुर मात्रा में हैं। कोई भी शौकीन व्यक्ति यदि चाहे तो बिना काँटे के केवल अपने रूमाल की मदद से ही इन्हें पकड़ सकता है। वैसे इस झील का विहंगम दृश्य नैनीताल की लैंडएंडस चोटी से भी देखा जा सकता है।

भीमताल

नैनीताल और खुरपाताल को देखने के बाद हम बस द्वारा भीमताल भी गए जो वहाँ से अठारह किलोमीटर दूर है। यह स्थान अलमोड़ा, रानीखेत और नैनीताल से सड़क द्वारा मिला हुआ है जिससे कुमाऊँ के सभी भागों के लोग यहाँ आते रहते हैं। नैनीताल से भीमताल जाते हुए मार्ग में चीड़ के जँगलों से आच्छादित भुवाली की रमणीक बस्ती भी देखने को मिलती है।

यहाँ पर पर्यटकों के ठहरने के लिए कई होटल तथा क्षय रोग के रोगियों के लिए एक सेनिटोरियम भी है।

नैनीताल की भाँति भीमताल भी कूर्मांचल का एक विशाल सरोवर है जिसकी लम्बाई ४४८ मीटर, चौड़ाई १७५ मीटर और गहराई बारह से अठारह मीटर तक है। रंग गहरा नीला है जो देखने में बहुत ही सुन्दर लगता है। इसकी पृष्टभूमि में सौ से डेढ़ सौ मीटर ऊँची पहाड़ियों की जड़ में स्थित भीमताल की सुन्दरता सचमुच ही देखने लायक है। झील के मध्य में एक बड़ा-सा टापू भी है, जहाँ पिकनिक का सुख लेने के लिए बीस-पच्चीस परिवारों के लोग मज़े से बैठ सकते हैं। इस टापू को देखकर कश्मीर की राजधानी श्रीनगर की चारचिनारी का स्मरण हो आता है। साथ ही, झील के स्वच्छ जल में इधर-उधर तैरती मछलियों और मन्थर गति से डोलती रंग-बिरंगी नौकाएं विभिन्न रुचि वाले दर्शकों का मन मुग्ध कर लेती हैं।

कुछ लोग भीमताल का सम्बन्ध महाभारत के यौद्धा भीम से जोड़ते हैं तो कुछ भीमेश्वर महाराज से जिसका यहाँ एक मंदिर भी है। वैसे नैनीताल की खोज से पहले भीमताल ही इस क्षेत्र की सबसे बड़ी झील मानी जाती थी जिससे इसकी भीमाकार परिधि को देखकर इसे 'भीमताल' कहना सार्थक ही है। इसका जल एक छोटी नहर द्वारा हल्द्वानी में ले जाया गया जिसको फिल्टर करके पीने के काम के लिए ले जाया जाता है। नैनीताल की भाँति भीमताल भी एक अति शांत-रमणीय स्थली है। एक बार यहाँ पहुँचने पर लौटने को जी नहीं चाहता और यहाँ की अनूठी सुषमा देखने की अभिलाषा बनी रहती है। भीमताल में आजकल एक छोटा-सा बाजार और विश्राम के लिए तीन-चार होटलों के अलावा और कुछ नहीं। यदि इस स्थली को एक पर्वतीय ग्रीष्मावास के रूप में विकसित किया जाए तो अल्मोड़ा,

रानीखेत व नैनीताल की तरह यह स्थान भी कुमाऊँ का एक उत्तम पर्यटन-केन्द्र बन सकता है।

नौकुचिया ताल

भीमताल के आसपास ही तीन और ताल हैं जिनमें नौ कोनों वाली नौकुचिया ताल की अपनी अलग विशेषता है। इसके बारे में ऐसा कहा जाता है कि अगर कोई व्यक्ति इसके नौ कोनों को एक साथ देख ले, तो उसकी तुरन्त मृत्यु हो जाएगी। वस्तुतः इस झील का जल चारों ओर इधर-उधर बिखरी पहाड़ियों की जड़ में इस तरह फैला हुआ है कि दर्शक को उसके सिर्फ सात ही कोने नज़र आते हैं। इस ताल में जगह-जगह खिले कमल के फूल और उसके चौड़े गोलाकार पत्ते तथा जल में विहार करती मुर्गाबियाँ एक मनोरम दृश्य प्रस्तुत करती हैं।

नैनीताल के सप्त सरोवरों में सात ताल और नल दमयन्ती ताल की भी अपनी अलग-अलग शोभा है। सात तालों में तीन का समूह राम, सीता और लक्ष्मण के नाम प्रसिद्ध हैं। साथ ही, नल दमयन्ती ताल का धार्मिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। यहाँ की खुदाई से कई सौ वर्ष पुरानी कुछ देव-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

रूपकुंड

नैनीताल की इन झीलों के अतिरिक्त समूचे उत्तराखंड में साठ और झीलें भी हैं जिनका यहाँ अलग-अलग विवरण देना संभव नहीं। इनमें चुरबारी ताल, वासुकी ताल, गोहना, हेम-कुंड, सतोपन्थ सरोवर का हाल हम पहले ही लिख चुके हैं। माणा दर्रे के निकट ५,३३५ मीटर की ऊँचाई पर देवताल और

उखीमठ क्षेत्र में दिउरीताल की गणना तो विश्व की सबसे ऊँची झीलों में की जा सकती है।

इसके साथ ही, चमोली जिले में ४,८०० मीटर की ऊँचाई पर रुपकुंड नामक झील आज संसार भर के वैज्ञानिकों एवं नृवंश शास्त्रियों के लिए मानवीय अवशेष के रहस्य का एक विषय बना हुआ है। पिछले कुछ वर्षों से यहाँ पर मनुष्यों के अस्थि-पंजर और बूट-चप्पल आदि यत्र-तत्र बिखरे पड़े मिले हैं जिससे इस झील को 'मृत्युकुंड' के नाम से संबोधित किया जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि अठारह सौ वर्ग मीटर के क्षेत्र में फैली इस झील के जिस भाग में अस्थिर-पंजर बिखरे पड़े मिले हैं, वह स्थान ग्लेशियर के गिरने के भय से बहुत दूर और सुरक्षित है। इस झील के चारों ओर दीवार जैसे पहाड़ खड़े हैं जो केवल पचास से पच्चहत्तर मीटर तक ही ऊँचे हैं। कुछ वर्ष पूर्व रूपकुंड के कुछ महत्वपूर्ण अवशेषों की एक प्रदर्शनी भी शिमला में लगाई गई थी जिसमें भूगोल वेत्ता स्वामी प्रणावा नन्द ने उस क्षेत्र में प्रचलित गीतों और कथाओं के आधार पर छः सौ साल पुरानी कन्नोज के राजा जसधौल (यशधवल) की होमकुंड की रोमाँचक यात्रा की पुष्टि की है जो इस प्रकार है—

एक समय की बात है कि नन्दा देवी (पार्वती) अपनी सखी-सहेलियों के साथ तालुरी बुग्याल गई। यहाँ की भाषा में बुग्याल वह मैदानी स्थान है जिसमें बर्फ का संचय केवल सर्दियों में ही रहता है और गर्मियों में यहाँ का हिम पिघल जाता है और तब यह स्थान एक चरागाह दिखाई देता है। तालुरी बुग्याल में पहुँचकर वहाँ पर सारा दिन खेल-कूद का कार्यक्रम चलता रहा। चलते समय नन्दा देवी के पांव का भूषण खो गया। उसकी तलाश करते हुए नन्दा देवी की दृष्टि कन्नौज राज्य पर पड़ी। तुरन्त ही उड़न-खटोले में बैठकर वह कन्नौज जा पहुँची। गढ़-

वाली राजा जसधौल और रानी बल्लभा नन्दा देवी को क्रोधित देखकर घबराए और आते ही पूछने लगे—"देवी, आपका यहाँ आना कैसे हुआ ?"

इसके उत्तर में देवी ने राजा से सारा राज्य देने को कहा पर राजा जसधौल कुछ धन-सम्पत्ति और आभूषण देने को राजी हुआ। नन्दा देवी ने इसमें अपना अपमान समझा और क्रोध में राजा को शाप देकर कैलाश लौट गई। देवी के जाते ही सारे राज्य में अकाल पड़ने लगा और सभी तरफ त्राहि-त्राहि मचने लगी। पके हुए चावलों में कीड़े पड़ने लगे; साग-सब्जी कड़वी होती गई; दही लाल होने लगी; मक्खन पर कुहरा जमने लगा; भैंसे से बछिया व गाय से भैंसा जन्मने लगा; खेतों में फसल नष्ट हो गई; पानी सूख गया; जल-सोतों से खून बहने लगा; पलंग पर बिस्तरे भी कांटे-से चुभने लगे। इससे राजा ने चिन्तित होकर राज्य भर के पण्डितों और ज्योतिषियों को पास बुलाकर उनसे इसका कारण जानना चाहा। सभी ने बताया कि यह सब कुछ नन्दा देवी के शाप का ही फल है। इसका एकमात्र उपाय यही है कि राजा और रानी दोनों स्वयं 'राजजात' की यात्रा करके नन्दा देवी से दोष-निवारण के लिए क्षमा-याचना करें। राजा ने राजधानी में पहुँचते ही रानी बल्लभा के हाथ पर राज-जात मनौती रख दी। मनौती के रखते ही सारे राज्य में शान्ति और समृद्धि का वातावरण छाने लगा। इसके साथ ही, राजधानी में राजजात पर जाने के लिए तैयारियां भी होने लगीं। राजा अपने राज्य का कार्यभार मन्त्री को सौंपकर रानी, बाल-बच्चों तथा सेना सहित राजजात पर राजसी ठाठ-बाट के साथ रवाना हो गया। राजजात के नियमानुसार बांण गाँव से आगे स्त्रियां, नौकर और बाजे-गाजे नहीं जा सकते, पर राजा जसधौल राज-जात के नियमों का उलंघन करके राजसी ठाठ-बाट के साथ बांण

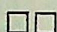
गाँव से आगे बढ़ गया। गर्भवती बल्लभा रानी के रूपकुंड के पास पहुँचते ही एक कन्दरा में प्रसव हो गया और राजा आगे न बढ़ सका जिससे उसने कन्दरा के चारों ओर के दो-तीन सौ मीटर लम्बे मैदान में अपने शिविर गाड़ दिए। राजसी ठाठ-बाठ के साथ राजा जसधौल और रानी बल्लभा को देखते ही नन्दा देवी ने कुपित होकर राजजात पर आए राजा, रानी और सैनिकों पर बर्फानी तूफान और हिमखंडों से इतनी भयंकर वृष्टि की जिससे राजा, रानी, नवजात शिशु व दो अन्य बालक तथा अनेक सैनिक सदा के लिए चिरनिद्रा में सो गए।

इस कथा का जो भी सार हो, पर यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि रूपकुंड में मानवीय अवशेषों के मिलने की संहारक दुघर्टना का एकमात्र कारण प्रकृति का प्रकोप ही हो सकता है। कुछ ही समय पहले कश्मीर के पहलगाँव में वृष्टिस्फोट की दुर्घटना तथा हिमाचल के किन्नौर व लाहौल-स्पति क्षेत्र में भूकम्प के निरन्तर झटके भी प्रकृति के ऐसी ही विनाशकारी रूप थे।

दूसरी ओर रूपकुंड झील उत्तराखंड की सुन्दर झीलों में से एक है। इस सम्बन्ध में यहाँ एक लोक-कथा भी प्रसिद्ध है। विवाह के पश्चात् जब शिव नन्दा देवी को साथ लेकर कैलाश लौट रहे थे तब मार्ग में कैलाश विनायक से आगे एक स्थान पर नन्दा देवी को प्यास लगी। थोड़ा आगे चलने पर एक जगह पर जल से भीगी हुई पृथ्वी का कुछ भाग दिखाई दिया। उसे देखते ही शिव ने उसमें अपना अस्त्र-शस्त्र त्रिशूल फैंका जिसके लगते ही कुँड का उद्भव हो गया। पानी पीते समय देवी को उसके स्फटिक-से निर्मल जल में अपने रूप की छवि दिखाई दी। इस पर प्रसन्न होकर नन्दा देवी ने उस कुँड का नाम 'रूपकुंड' रख दिया।

६

इस देश में गंगा बहती है



अक्तूबर की एक सुहावनी शाम को अपने छोटे भाई के साथ गढ़मुक्तेश्वर के ब्रजधाट में गंगा के किनारे पर टहलते हुए मुझे ऐसा लगा जैसे उसकी लहरें मुझ से कह रही हों कि यहाँ खड़े होकर क्या देखते हो, अगर गंगा का दिव्य एवं महान् रूप देखना चाहते हो तो गंगोत्री और गोमुख में जाकर देखो। बस, फिर क्या था। गंगा की लहरों का मौन निमन्त्रण पाकर मेरा मन फौरन ही वहाँ जाने के लिए मचल उठा ! इस प्रकार एक सप्ताह के यात्रार्थ प्रबन्ध के बाद हम मेरठ से बस में सवार होकर हरद्वार पहुँचे।

वस्तुत: हरद्वार से ही गंगा का दिव्य सौन्दर्य आरम्भ हो जाता है और जैसे-जैसे आगे बढ़ना होता है वैसे-वैसे इसकी महान् रुपावली भी निखरती जाती है। हरद्वार में गंगा के तट पर बनी हर की पौड़ी (पैड़ी), ब्रह्मकुंड, घन्टाघर, जल में तैरती असंख्य मछलियाँ तथा सन्ध्या वेला में आरती-गीत की अनुपम रूपछवि देखते ही बनती है। यहाँ के निकटवर्ती स्थानों में कनखल, गुरुकुल काँगड़ी, सप्तऋषि आश्रम, भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स का औद्योगिक प्रतिष्ठान व ऋषिकेश हैं।

नरेन्द्र नगर

गंगोत्री जाने के लिए ऋषिकेश से २४८ किलोमीटर लम्बा पर्वतीय मोटर मार्ग है। ऋषिकेश से बस में सवार होकर हमें

सबसे पहले १६ किलोमीटर पर चीड़ के पेड़ों से आच्छादित नरेन्द्र नगर का रमणीय स्थान देखने को मिला। यह नगरी सन् १,६२० में महाराज नरेन्द्रशाह द्वारा बसाई गई थी। समुद्र-तल से १,२०० मीटर की ऊँचाई पर स्थित नरेन्द्र नगर की ऊँची-नीची यत्र-तत्र बिखरी हुई श्वेत इमारातें इस वन प्रदेश में भव्य दिखाई देती हैं। यह जगह पहले टिहरी रिसायत की शीतकालीन राजधानी थी और अब टिहरी जिले का मुख्य स्थान है। यहाँ पर डाकघर, तारघर, डाकबंगला, औषद्यालय और पहाड़ी क्षेत्र का अच्छा बाजार है। हमारी बस नरेन्द्रनगर में दस-पन्द्रह मिनट रुककर फिर अपनी मंजिल पर आगे बढ़ी और लगभग प्रातः ग्यारह बजे तक टिहरी पहुँच गई।

टिहरी

टिहरी गढ़वाल मंडल की एक प्रमुख नगरी है और उत्तर प्रदेश का एक जिला भी। यह जगह भागीरथी और भिलंगना नदियों के संगम 'गणेश प्रयाग' के पर्वतांचल में, ७५६ मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। चूंकि यहाँ भागीरथी धनुषाकार में बहती है, इसलिए इसका नाम टेढ़ी अर्थात् टिहरी पड़ा। यहाँ के प्रसिद्ध मंदिरों में ब्द्रीनाथ व केदारनाथ के मंदिर हैं और निकटवर्ती स्थानों में प्रतापनगर देखने लायक है। इस नगरी की स्थापना महाराज सुदर्शनशाह ने सन् १८१८ में की थी। स्वामी रामतीर्थ जी को टिहरी बहुत पसन्द थी, जिन्होंने अपने जीवन के पिछले चार वर्ष यहीं व्यतीत किए और अन्त में भिलंगना नदी में जाकर लीन हो गए।

उत्तरकाशी

टिहरी से चलकर हमारी बस घरासू होती हुई मध्याह्न तक उत्तरकाशी पहुँची। उत्तरकाशी गुप्तकाशी की भाँति गढ़वाल मंडल की एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण नगरी है जो अब उत्तरप्रदेश का एक सीमावर्ती जिला भी है। यहाँ पर अनेक प्राचीन मंदिर हैं जिनमें विश्वानाथ का मंदिर तथा देवासुर संग्राम के समय की कट्टी हुई शक्ति का विशेष महत्व है। केदारनाथखंड में वर्णित मुक्तिदाता काशी यही है। इसकी ऊँचाई १,२०० मीटर है और यात्रियों के सुख-सुविधा हेतु यहाँ पर विश्राम के लिए कई धर्मशालाएँ और स्नान के लिए पक्के घाट बने हुए हैं। साथ ही, यहाँ पर भगवती भागीरथी की दिव्य रुपावली बड़ी हृदयग्राही एवं चित्ताकर्षक है। स्वतन्त्रता के बाद उत्तरकाशी में नेहरू पर्वतारोहण विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। हमारे देश में इस तरह के अब तक दो ही पर्वतारोहण संस्थान हैं; जिनमें एक दार्जिलिंग में है और दूसरा यहाँ पर।

भागीरथी का महान् आकर्षण

उत्तरकाशी से आगे बढ़ते हुए मनेरी, गंगनानी, झाला, हरसिल जैसे मनोरम स्थानों से होती हुई हमारी बस अपराह्न तक भागीरथी के तट पर स्थित लंका में जाकर खड़ी हो गई। वहाँ नदी पर कोई पुल न था जिससे भैरों घाटी तक का यह ढाई किलोमीटर का दुर्गम पर्वतीय सफ़र हमें पैदल ही तय करना था। अतः रात भैरों घाटी में विश्रामकर, हम अगले दिन सूर्योदय के साथ ही गंगोत्री की ओर आगे बढ़े। इस बीहड़ मार्ग पर बस में बैठे-बैठे हमें कदम-कदम एवं चप्पा-चप्पा पर भागीरथी की जो दिव्य रुपावली,

अमृतजल की स्वच्छ-निर्मल धारा, स्वर्गिक स्वरलहरी और महान् गति देखने-निहारने को मिली वह अकथनीय है। हाँ! गोस्वामी तुलसीदास जी की "गिरा अनयन नयन बिनु बाणी" वाली उक्ति यहाँ भी चरितार्थ होती है। भागीरथी ही गंगा की सबसे प्रमुख नदी है जिसकी तुलना में संसार की कोई और नदी नहीं। गंगाजल अभी भी वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान का विषय बना हुआ है। इसमें आश्चर्यजनक बात यह है कि गंगाजल वर्षों तक किसी शीशी या बर्तन में पड़ा रहने से खराब नहीं होता जबकि औषधियों द्वारा फिल्टर किया गया जल भी निश्चित अवधि के बाद सड़ने लगता है। यह गौरव केवल भागीरथी को ही प्राप्त है न कि अलकनन्दा, मन्दाकिनी या अन्य किसी गंगा की सहायक नदी को जो हिमालय के इसी क्षेत्र से निकलती हैं। गोमुख से देव प्रयाग तक के क्षेत्र में बहती हुई भागीरथी के प्रवाह में भी कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं पड़ता जबकि इसमें जगह-जगह अनेक झरनों, प्रपातों, धाराओं तथा नदियों का जल विलीन होता रहता है। इस देवरम्य क्षेत्र में इसे जहाँ कहीं भी देखो तो फिर वही गंगा की गंगा। इस प्रकार भगवती भागीरथी की अलौकिक छवि एवं गति को निकट से निहारते हुए हम सूर्यास्त से पूर्व ही गंगोत्री पहुँच गए।

गंगोत्री

चारों ओर धवलधार पर्वतों से घिरी और सागर के तल से ३,०९० मीटर ऊँची गंगोत्री पुरी स्वर्ग-सरीखी लगती है। इसके पिछली तरफ हिमानी शिखरों की एक शृंगावली है और उसके दोनों ओर देवदार और भोजपत्रों (भुज) से ढकी हिमालय की अन्य शिखरावली। यहाँ का प्रमुख आकर्षण गंगा का

देवरम्य स्वरूप है जिसके दर्शनमात्र से हम निहाल हो उठे और हमारी यह शोभा-यात्रा सार्थक रही। गंगा की चाँदी-जैसी श्वेत धाराओं के साथ-साथ हमें यहाँ उसके रमणीय तट पर विभिन्न आकार-प्रकार की अनेक मनमोहक चट्टानें भी देखने को मिलीं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। यहाँ गंगा-घाट के निकट ही गंगा का प्रसिद्ध मंदिर है जिसमें गंगा, यमुना, सरस्वती, लक्ष्मी, अन्नपूर्णा, जाह्नवी तथा भागीरथ महाराज की पाषाण मूर्तियाँ हैं।

गंगोत्री शब्द का अर्थ उत्तर की गंगा यानी जहाँ गंगा उतरी। कहते हैं कि गंगा इसी जगह आकाश से उतरी थी। वस्तुतः यहाँ से कुछ दूरी पर गंगा जी एक खास ऊँचाई से गिरकर प्रपात बनाती हैं। सम्भवतः इस प्रपात को देखकर ही गंगावतरण की महान् कल्पना की गई हो। प्रपात की नैसर्गिक स्वरलहरी के साथ-ही-साथ यहाँ चारों ओर फैली देवदार और भोजपत्रों की सुन्दरता को देखकर मेरे जैसे प्रकृतिदर्शक को स्वर्गलोक का-सा आभास होने लगता है। प्रपात का जल पूरे प्रवाह के साथ नीचे गौरीकुंड में अत्यन्त वेग से गिरता है जो कुंड की गोलाई के कारण गोलाकार में तेजी से घूमने लगता है और फिर द्रुत गति से आगे बढ़ता है। गौरीकुंड का यह दृश्य सचमुच ही बड़ा हृदयग्राही एवं प्रेरक है।

गोमुख

गंगोत्री से गोमुख २२ किलोमीटर दूर है और समुद्र की सतह से ३,८३१ मीटर ऊँचा। यहाँ का दुर्गम-संकीर्ण रास्ता चढ़ाई के साथ-साथ अनगिनत पत्थरों से भरा पड़ा है जिससे वहाँ जाने का साहस कुछ ही लोग कर पाते हैं। इस मार्ग में लक्ष्मीवन, देवगाट, चीड़वासा और पुष्पवासा जैसे रमणीक स्थल देखने को

मिलते हैं। इन स्थलों की यात्रा करते हुए कहीं पेचदार मोड़ हैं तो कहीं घास के मैदान, कहीं चीड़ की लम्बी-लम्बी कतारें हैं तो कहीं भोजपत्रों की घनी वृक्षावली। घाटियों में गगा अपने नए-नए रूपों में नज़र आती है। कहीं पर पत्थर-चट्टानों से टकरा कर वह उछल-कूद मचाती है, तो कहीं पर ऊँचाई से गिरकर वह कुछ ही दूरी पर शांत होकर बहने लगती है। इस दुर्गम पथ पर निरन्तर चलते हुए हम बहुत थक गए थे, परन्तु गंगा के उद्‌गम-स्रोत गोमुख के पास पहुँचकर गंगा मैया का जो नज़ारा हमें देखने को मिला उसे शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता। गंगा के उस सुभव्य रूप को देखकर हमारी सारी थकान काफूर हो गई और हमारा मन निर्मल आनन्द से अभिभूत हो उठा!

यहाँ पर दूसरे तीर्थों की तरह न कोई मंदिर है और न ही पुजारी, न कोई बस्ती है और न ही कोई चहल-पहल। बस, हमारे सामने, हमारे नेत्रों के बिल्कुल ही सामने था—पच्चीस किलोमीटर लम्बा गंगोत्री ग्लेशियर का देवरम्य दर्शन! यह ग्लेशियर गोमुख पर समाप्त होता है जो अब धीरे-धीरे पीछे की की ओर खिसक रहा है। उसके बाईं ओर एक गहरी खाई थी जिसमें चीड़ और भोजपत्रों के अनगिनत वृक्ष उगे हुए थे। नीचे घाटियों में गंगा का मधुर गीत बराबर सुनाई दे रहा था। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि गंगा गोमुख यानी गाय के मुख जैसी कन्दरा से निकलती है। वस्तुतः गोमुख से जहाँ से गंगा निकलती है गाय के मुख के आकार जैसी नहीं है। गो का मतलब है पृथ्वी, क्योंकि गंगा यहाँ पर सबसे पहले पृथ्वी के मुख से निकलकर बाहर आती है, इस लिए इस जगह का नाम 'गोमुख' रखा गया।

गंगा पृथ्वी पर कैसे आई

देवलोक से गंगा पृथ्वीलोक पर कैसे आई, इस बारे में एक पौराणिक कथा बहुत प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में सगर नाम का एक राजा था। एक बार उसने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ के घोड़े की तलाश में उसके साठ हजार पुत्रों ने पृथ्वी का कोना-कोना छान मारा, पर वह घोड़ा नहीं मिला। तब वे सब-के-सब पृथ्वी के भीतर जाकर ढूंढने लगे और ढूँढते-ढूँढते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ कपिल मुनि तपस्या कर रहे थे। तप में विघन पड़ता देखकर मुनि को क्रोध आ गया और उसके शाप से वे सभी भस्म हो गए। उनका उद्धार करने के लिए सगर के वंशधरों में अंशुमान और दिलीप राजाओं ने भी प्रयत्न किए पर अन्त में महाराज भगीरथ ही गंगा को पृथ्वीलोक में लाने के लिए सफल हुए। पुराणों में गंगा का निवास स्थान विष्णुलोक माना जाता है। इस लिए भगीरथ ने सब से पहले विष्णु की पूजा की। जब गंगा वहाँ से चली तो ब्रह्मा ने उसे अपने कमंडल में रोक दिया। तब भगीरथ को ब्रह्मा की स्तुति करनी पड़ी। पर कठिनाई यह थी कि गंगा को पृथ्वीलोक में कैसे लाया जाए? अन्त में ब्रह्मा के कहने पर महाराज भगीरथ ने शिव की आराधना की और शिव गंगा को अपनी जटाओं में धारण करने के लिए राजी हो गए। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से लाँघती हुई गंगा सबसे पहले हरद्वार में पहुँचकर मैदानी क्षेत्र में बहती है। वहाँ से आगे बढ़कर गंगा हस्तिनापुर, गढ़मुक्तेश्वर, कानपुर होती हुई प्रयाग पहुँचती है। यहाँ पर इसमें यमुना भी आ मिलती है। वहाँ से चलकर वाराणसी, पटना होती हुई गंगा की विशाल धारा बंगाल की खाड़ी में जाकर समुद्र की गोद में विलीन हो जाती है।

इस कथानुसार गंगा के उद्‌गम तक सबसे पहले पहुँचने का

परम श्रेय भगीरथ को ही प्राप्त है। गंगा भारत की एक महान् नदी है। जो भक्ति और श्रद्धा गंगा के प्रति हमारे देश में अनादि काल से चली आ रही है वह संसार की शायद ही किसी अन्य नदी या नद को उपलब्ध हो। जब से आर्यावत का इतिहास शुरू होता है तभी से गंगा की कहानी आरम्भ होती है। इसी कारण गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश को आर्यावत कहा गया है। गंगा उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल के जिस भू-भाग से गुजरती है, वहाँ का काया-कल्प कर देती है। वहाँ की बंजर भूमि को अमृत-जैसा जल देकर और मिट्टी को उपजाऊ बना कर सोना उगलती है। इसके साथ ही, इसके विशाल तट पर कई घने वन हैं जिससे सैकड़ों टन लकड़ी मिलती है। जगह-जगह बाँधों द्वारा इसके जल को रोककर कई बिजली घर बनाए गए हैं। इससे एक ओर करोड़ों लोगों को बिजली मिलती है तो दूसरी ओर कई उद्योग धन्धे भी विद्युत शक्ति से चलाए जाते हैं। इस समय गंगा पर बिजली बनाने की तीन बड़ी-बड़ी योजनाएं चल रही हैं जिसमें उत्तरकाशी की मनेरी योजना, टिहरी योजना व हरद्वार-ऋषिकेश की जल-विद्युत योजना हैं। टिहरी बाँध के बन जाने से गंगा में बाढ़ की रोकथाम की जा सकेगी। सचमुच ही हमारे देश के साँस्कृतिक इतिहास में गंगा से बढ़कर और कोई वैभव नहीं। इसके तट पर अनेक तीर्थ हैं जहाँ समय-समय पर कई मेले जुड़ते है। हर बारह वर्ष के बाद हरद्वार और प्रयाग में कुंभ का विशाल मेला लगता है जो इस पृथ्वी का सबसे बड़ा मेला माना जाता है। कार्तिक पूनम को गढ़मुक्तेश्वर में, मकर संक्राति को प्रयाग में तथा बैसाखी के अवसर पर हरद्वार में हजारों की संख्या में लोग दूर-दूर से यहाँ इक्ट्ठे होते हैं।

हमारे प्राचीन साहित्य में गंगा को अलकनन्दा, विष्णुपदी,

मन्दाकिनी, भागीरथी, जाह्नवी आदि नामों से वर्णित किया गया है। वस्तुतः ये सभी गंगा के ही रूप हैं जो किसी स्थान विशेष में बहने के कारण उसी नाम से जाने जाते हैं। अलकनन्दा, विष्णुपदी, मन्दाकिनी और भागीरथी का उल्लेख तो हम पहले ही कर चुके हैं। जाह्नवी भागीरथी की एक सहायक नदी है जिसे स्थानीय लोग जाड़ गंगा कहकर पुकारते हैं। इस संदर्भ में हमारा यह कहना उचित ही होगा कि गंगा हमारे देश की केवल एक नदी मात्र नहीं वरन् धार्मिक, सामाजिक, साँस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से इसका बहुत बड़ा महत्व है जिससे इसे भारतीय साहित्य में माई, माता, देवी, त्रिलोक तारिणी, भगीरथ पुत्री आदि गौरवशाली नामों से सम्बोधित किया गया है। हिन्दी साहित्य में एक ओर जहाँ गंगा की छबि, गंगा लहरी, श्री गंगाष्टक आदि उच्च रचनाओं को लिखकर हिन्दी कवियों ने गंगा की महिमा का गुणगान किया है वहाँ दूसरी ओर विदेशी भाषाओं में भी इसको भारत की पावन नदी कहकर इसकी गौरव-गरिमा को स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में गंगा की जन्मभूमि गढ़वाल में भी अनेक लोक-गीत उपलब्ध हैं जिसमें इसके माहात्म्य को कई रूपों में वर्णित किया गया है। एक लोक-गीत में इसे अर्थ-दात्री लक्ष्मी और ऐश्वर्यदात्री जननी के रूप में चर्चित किया गया है और कहा गया है कि गंग माई, तू ने हिमालय के क्रीड़ में जन्म लिया है तेरी सोने की अलकें हैं और बाहें मोतितों से युक्त हैं। गंगा माई, जब तू धरती पर आई, जहाँ-जहाँ तू जाती है तेरे पीछे पीछे हीरे की लड़ियां और बैलों की जोड़ियां चली आती हैं। यही नहीं, तू चाँदी की तरह चमकती है और तुम्हारा रूप सुहागन की समान सुन्दर है।

१०

सुन्दरता की खान जमनोत्री

□□

गंगा की भाँति यमुना भी हमारे देश की एक महान् नदी है जो जमनोत्री से निकलकर गंगानी, डँडाल गाँव, कालसी होती हुई दिल्ली पहुँची है। आगे बढ़कर यह मथुरा, वृन्दावन, आगरा होती हुई प्रयाग पर गंगा में विलीन हो जाती है। गंगोत्री से लौटकर पहले हम भैरों घाटी आए और फिर लंका से बस में बैठकर जमनोत्री की ओर स्यान चट्टी के लिए रवाना हुए। यद्यपि हम उसी मार्ग से लौट रहे थे जिससे हम गंगोत्री गए थे फिर भी वहाँ के प्राकृतिक जगत् के सौन्दर्य को देखते हम अघाते न थे। एक के बाद दूसरा दृश्य अपनी नवीन सुन्दरता लिए आ रहा था। इस सफ़र में बस में बैठे-बैठे भागीरथी की रूपछटा और उसके इर्द-गिर्द की पर्वत-मालाओं में दूर-दूर तक बिखरी देवदार और चीड़ की लम्बी-लम्बी कतारों को देखकर हम कभी-कभी एक अनोखे सुख से पुलकित हो उठते। देवदार का पेड़ सचमुच ही सब पेड़ों में से सुन्दर होता है। इसकी इधर-उधर, लम्बी और नीचे को झुकी-सी पतली-पतली मयूरपंखी पत्तियाँ देखने में बहुत ही भली मालूम देती हैं। यह वृक्ष शिशिर के अत्याधिक ठण्डे मौसम में जब बर्फ का तूफान आता है तब भी हरा-भरा रहता है। अतएव हम देवदार को 'वृक्षराज' की संज्ञा दे सकते हैं। वस्तुतः यह पेड़ बहुत ऊँचा, एकदम सीधा और गहरे हरे रंग का होता है। कोई-कोई पेड़ तो पच्चास-साठ मीटर तक ऊँचा देखा गया है। देवदार को संस्कृत में 'देवदारू' कहते हैं। हरसिल और उत्तरकाशी के बीच

कई स्थानों पर यहाँ हमें भागीरथी के तट पर देवदार के झुरमुटों को देखकर ऐसा लगता था, मानो वे गंगा मैया को नतमस्तक प्रणाम कर रहे हों। अपनी अनूठी सुन्दरता के साथ-साथ देवदार का पेड़ बड़ा उपयोगी होता है। यहाँ के सभी मकान इसी लकड़ी के बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त यह रेल के स्लीपरों, समुद्री जहाज़ों व स्ट्रिमरों आदि के काम भी आता है। इस तरह लंका से चलकर हम हरसिल, मनेरी, उत्तरकाशी, सिंगोट होते हुए गंगानी पहुँच गए।

गंगानी

सिन्धु-तट से २,१०० मीटर की ऊँचाई पर गंगानी यमुना के किनारे रवाई तहसील का एक प्रमुख पहाड़ी कस्बा है। गंगोत्री जाकर जो लोग जमनोत्री जाना चाहते हैं अथवा जमनोत्री जाकर जो लोग गंगोत्री जाना चाहते हैं तथा जो यात्री सीधे ऋषिकेश से जमनोत्री आते-जाने हैं, उन्हें गंगानी आना पड़ता है। अतः गंगानी को गंगोत्री-जमनोत्री मार्ग का पथ-संगम कहना चाहिए। इस मर्ग में गंगानी का वही महत्व है जो केदार-बद्री मार्ग में रुद्र प्रयाग का है। यहाँ का आकर्षण यमुना नदी है जो कल-कल करती अपने पथ पर अग्रसर है।

जमनोत्री की ओर

गंगानी से चलकर हमारी बस यमुना चट्टी से होती हुई अपराह्न तक स्यान चट्टी पर जाकर खड़ी हो गई, जहाँ से आगे हमें पैदल चलना था। वैसे स्यान चट्टी एक छोटी-सी बस्ती हैं जिसमें सरकार की ओर से रात्रि-विश्राम के लिए एक डाक

बंगला भी है। रात इसी डाकबंगले में विश्रामकर हम अगले दिन तड़के ही उठकर चल पड़े जमनोत्री की दिव्यस्थली की ओर। इस पथ पर चलते हुए हम कुछ देर के लिए फूल चट्टी और जानकी चट्टी में रुके। इन चट्टियों में चाय व भोजन आदि का प्रबन्ध गंगोत्री और केदारनाथ की चट्टियों की अपेक्षा काफी निम्न स्तर का था जिसमें सुधार की अब पर्याप्त आवश्यकता है।

गंगानी से बराबर हम यमुना के साथ-साथ चल रहे थे। हिमालय के हरित परिधान पहने शिखारों के बीच बहती हुई कालिन्दी कभी हमारे पथ के नीचे, सैकड़ों मीटर नीचे हो जाती और कभी हमारे निकट, हमारे बिल्कुल सन्निकट बहने लगती। इस प्रकार कालिन्दी के साथ-साथ चलते हुए हम उसकी श्यामल रूपछवि का सतत आनन्द उठाते रहते थे। यद्यपि गंगा की तुलना में यमुना एक बहुत ही छोटी नदी है, फिर भी ज्यों-ज्यों हम उसके उद्गमतीर्थ के निकट पहुँच रहे थे, उसका रूप, रंग और आकर्षण निखरता जा रहा था। इसके साथ ही, इस मार्ग में हमें देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से आए तीर्थयात्री व प्रकृतिदर्शक आते-जाते मिलते रहते थे जिनमें कोई 'जय जमनोत्री' कहता तो कोई 'यमुना मैया की जय' का उद्‌घोष करता जिससे सारा वातावरण मुखर हो उठता था।

जानकी चट्टी से जमनोत्री छः किलोमीटर दूर है। यह सारा-का-सारा मार्ग एकदम थका देने वाला है। निरन्तर चढ़ाई और अधिक ऊँचाई के कारण इसपर बढ़ते हुए हमारा बार-बार साँस फूलने लगता था, किन्तु मार्ग की अद्‌भुत सुन्दरता का रसास्वादन करते हुए हम बराबर आगे बढ़ते जा रहे थे। सचमुच, देवरम्य हिमालय के सौन्दर्य में न जाने कैसा जादू है कि यात्री यहाँ मार्गारोहण करते समय अपने शारीरिक कष्टों को भुलाकर प्रकृति के विशाल वैभव का आनन्द उठाते हैं। एक स्थान पर

जब हम अधिक थककर बैठे ही थे, तब हमें हजारों पत्थरों के संग खिलवाड़ करती कर्मवीर कालिन्दी मानो हमें कह रही थी— "हारिए न हिम्मत बसारिए न राम नाम।" और तभी हमारे थके-माँदे कदमों में शक्ति लौट आई और हम फिर उत्साहित होकर अपने गन्तव्य पर बढ़ते हुए शाम तक जमनोत्री पहुँच गए।

भरपूर सुन्दरता

जमनोत्री की ऊँचाई ३,२७० मीटर है और ऋषिकेश से यह देवस्थली २२० किलोमीटर दूर। यहाँ प्रकृतिरानी की भरपूर सुन्दरता देखते ही बनती है। चारों ओर दूर-दूर फैली हिमालय की धवल शिखरावली और मध्य में देवदार व चीड़ की हरित वृक्षावली। नीचे कल-कल निनाद करती कालिन्दी की श्यामल धारा। जब हम वहाँ पहुँचे तब रवि-रश्मियाँ रवि-नन्दिनी यमुना से अठखेलियाँ कर रही थीं। सारा दृश्य एकदम अलौकिक था! काफी देर तक हम सुनहली सन्ध्या के उस अपूर्व दृश्य को मन्त्र-मुग्ध खड़े देखते रहे। उस समय ऐसा लगता था जैसे हम सुन्दरता की खान में आ पहुँचे हैं। जमनोत्री से यमुना का उद्गम केवल छः किलो मीटर दूर है। गंगोत्री की भाँति यहाँ पर कोई विशेष बस्ती नहीं। केवल विश्राम के लिए कुछ धर्मशालाएँ और पुहोहितों के मकान तथा भोजन आदि के लिए दस-पन्द्रह दुकानों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यहाँ के पंडे सर्दियों में खरसाली चले जाते हैं।

यमुना की दूसरी ओर सूर्यकुंड और तृप्तकुंड नामक गर्म पानी के दो कुँड हैं। सूर्यकुंड का जल बहुत ही गर्म है जिसमें तीर्थयात्री आटे की रोटियाँ, चावलों की खिचड़ी तथा आलू पकाकर लौटते समय प्रसाद के रूप में अपने-अपने घरों को ले जाते हैं। वास्तव में ये रोटियाँ आदि पहले पानी के नीचे चली

जाती हैं और फिर स्वयं पककर ऊपर आ जाती हैं। तप्तकुंड का जल गुनगुना है जिसमें यात्री मज़े से स्नान कर सकते हैं और मन-ही-मन प्रकृति-माता की अद्‌भुत कारीगरी की सराहना करते हैं। इस कुँड के निकट ही गर्म जल का एक फव्वारा है जिसे 'गोमुख' कहते हैं। यहाँ पर कुछ लोग अपने पितरों की शान्ति के लिए पिंडदान आदि करते हैं।

जमनोत्री को उत्तराखण्ड के चौथे पुण्यधाम होने का गौरव प्राप्त है। यहाँ पर यमुना का एक छोटा-सा मंदिर है जिसमें गंगा और यमुना की दो पाषाण मूर्तियाँ हैं। यमुना की मूर्ति श्याम रंग की है और गंगा की श्वेत रंग की, जो इनके रंगों को ही अंकित करती हैं। पुराणों में यमुना को सूर्य तनया और यमराज की भगिनी कहा गया है तथा इसका उल्लेख श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों में भी किया जाता है। इन कथाओं का जो भी महत्व हो, पर यह सभी जानते हैं कि यमुना का मनोहर तीर बाल-गोपाल कृष्ण का क्रीड़ास्थल रहा है। इस सम्बन्ध में हमारे प्राचीन ग्रन्थों में कालिन्दी और कृष्ण तथा यमुना व यशोदा-नंद के अनेक सुन्दर उपाख्यान देखने को मिलते हैं। एक ओर जहाँ हजारों की संख्या में श्रद्धालु जनता इन दुर्गम पर्वतीय संकीर्ण रास्तों में दौड़ आती है, वहाँ दूसरी ओर अधिकाधिक गिनती में पर्यटक भी यहाँ आकर देवरम्य हिमालय का दिग्दर्शन करते हैं। यमुना की संस्कृति गंगा से भी प्राचीन मानी जाती है। आर्यों के भारत में आगमन के पश्चात् उनका सबसे पहला युद्ध यमुना तट पर ही हुआ और तत्पश्चात् वे यहाँ के विशाल प्राकृतिक वैभव से आकृष्ट होकर यहीं रहने लगे। उस समय जमनोत्री से कालसी तक का सारा प्रदेश 'यामुन प्रदेश' के नाम से प्रख्यात था, जहाँ पर माँधाता, सोमक, अंबरीश आदि राजाओं ने अश्वमेघ आदि यज्ञ किए।

११

देहरा घाटी ने हमें पुकारा !

□□

जमनोत्री से लौटकर हम कुछ दिन तक ऋषिकेश के परमार्थ निकेतन में ही रहे। यहाँ पर हमें अपने एक सैलानी मित्र का पत्र मिला जिसमें लिखा था—"दर्शक भैया, यदि आप देहरा घाटी में नदियों व प्रपातों की नैसर्गिक स्वरलहरी सुनना चाहते हो, तो फौरन ही चले आओ। आजकल यहाँ पर घाटी में जगह-जगह दौड़ती-नाचती जलधाराओं की मधुर राग-रागनियाँ मुखर हो उठी हैं।" पत्र को पढ़ते ही ऐसा लगा जैसे देहरा घाटी ने ही स्वयं हमें पुकारा है और उसका मूक निमन्त्रण पाकर हम वहाँ जाने के लिए अपने को रोक नहीं पाए। अतः ६ दिसम्बर को टैक्सी में सवार होकर डोइवाला होते हुए हम देहरादून पहुँच गए। वैसे हम देहरा घाटी के देहरादून, मसूरी आदि स्थानों को पहले भी कई बार देख चुके थे पर इस बार की यात्रा का अपना अलग आकर्षण था।

देहरादून

देहरादून ही देहरा घाटी की सबसे प्रमुख और सुन्दर नगरी है। यहाँ पर आप कहीं भी जाइए, हरियाली-ही-हरियाली दृष्टिगोचर होगी। यदि एक ओर वनों में शाल, तूण और युक-लिपटस के वृक्ष आपका मन मुग्ध कर लेते हैं तो दूसरी ओर उपवनों में लीची, अमरूद व आमों से लदे पेड़ भी। यहाँ के

दर्शनीय स्थानों में गुरुद्वारा, गुच्चूपानी, वन अनुसंधानशाला, भारतीय सैनिक एकडमी तथा सहस्त्रधारा हैं। बाजारों में पलटन बाजार, न्यू कनाट प्लेस, दिलाराम बाजार प्रसिद्ध हैं। यहाँ की ऊँचाई ६३० मीटर है और रेल का अंतिम स्टेशन होने के कारण मसूरी और चकराता जाने वाले पर्यटक भी यहीं से होकर जाते हैं।

गुरु रामराय साहब का गुरुद्वारा देहरादून नगरी की एक ऐतिहासिक इमारत है। सन् १,६९९ में सबसे पहले गुरूजी ने यहाँ पर आकर डेरा डाला था और तब से इस घाटी को 'देहरा' घाटी कहते हैं। उस समय देहरादून के आसपास तीन ही गाँव थे जिनको गढ़वाली नरेश फतहशाह ने गुरू जी को उपहार के रूप में दिया था, जो बढ़ते-बढ़ते आज उत्तर प्रदेश का एक पृथक ज़िला बन गया है। गुच्चूपानी का आकर्षण एक छोटी-सी कन्दरा है जिसमें से टोंस नदी की एक क्षीण धारा बाहर आती है। इसे कुछ लोग 'राबर्स केव' भी कहते हैं। यहाँ दोनों ओर की पहाड़ियों से रवि-रश्मियाँ नहीं पहुँच पातीं जिससे दिन भर अन्धेरा-सा छाया रहता है। देहरादून को वन अनुसंधानशाला का तो अपना अलग ही महत्व है। यह प्रतिष्ठान चकराता मार्ग पर स्थित है। यहाँ चारों ओर वृक्षावली के बीच इसकी मुख्य इमारत देखने में बड़ी सुन्दर लगती है। इस अनुसंधानशाला का सारा क्षेत्र ग्यारह सौ एकड़ भूमि में फैला हुआ है जिसमें प्रयोगात्मक वन, वनस्पति उद्यान तथा संग्रहालय का शानदार दुमंजिला भवन है। संग्रहालय की वस्तुओं में जन साधारण की रुचि को सबसे अधिक आकृष्ट करने वाली वस्तु है—लगभग सात सौ वर्ष पुराना देवदार वृक्ष का तना। यह वृक्ष सन् १,९०० में गिराया गया था। इसके अतिरिक्त यहाँ की औषधिशाला में संसार के लगभग ढाई लाख प्रमाणित नमूने रखे हुए हैं जिनकी संख्या

बराबर बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही, संग्रहालय में तीन हजार कीट हैं जो कीट जीवन के विभिन्न अवस्थाओं को प्रदर्शित करते हैं। वन अनुसंधानशाला की भाँति भारतीय सैनिक एकडमी भी देहरादून की एक गौरवमय संस्था है जिसमें हर वर्ष सैकड़ों युवक प्रशिक्षण प्राप्त करके सेवा में कमीशन प्राप्त करते हैं। यह संस्था क्लेमन टाऊन एवं पंडितवाड़ी में स्थित है।

सहस्त्रधारा

सहस्त्रधारा नाम की अनोखी स्थली देहरादून नगरी से चौदह किलोमीटर दूर, नाँगल की पथरीली पहाड़ियों में बालदी नदी के तट पर स्थित है। यहाँ कन्दरा में कैलशियम की सैकड़ों धाराएँ एक साथ निरन्तर गिरती रहती हैं, जिससे स्थानीय भाषा में इसे 'सहंसरधारा' कहते हैं। वास्तव में यहाँ चूने के पहाड़ हैं और इसका जल बड़ा स्वास्थ्यवर्द्धक है। यात्री इन धाराओं के नीचे बैठकर मज़े से स्नान करते है और पर्वत पर कोई झरना अथवा सोता न देखकर मन-ही-मन प्रकृति की इस अनोखी देन पर अचरज करने लगते हैं। कन्दरा में कैलशियम से ही छोटी-छोटी पत्तियों और फूलों पर टपकते हुए जल-बिन्दुओं के खनिज-तत्व अपना आवरण चढ़ाते रहते हैं जिससे कुछ समय के बाद ये सुन्दर पत्थर-से दिखने लगते हैं।

सहस्त्रधारा प्रपात के निकट ही नदी के दूसरे तट पर एक छोटा-सा शीतल सोता भी है। इसका जल धरती से फूटता रहता है। इसके पास खड़े होते ही दुर्गन्ध आने लगती है, परन्तु यात्री नाक-मुँह न सिकोड़कर इसके जल को चुल्लू में भर-भरकर खुशी से पीते हैं। रक्त विकार तथा चर्मरोग से पीड़ित रोगी दूर-दूर से यहाँ आकर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार स्वयं अपना

उपचार करते हैं और कुछ यात्री तो इसके जल को गंगाजल की भाँति बोतलों में भरकर लौटते समय अपने साथ ले जाते हैं। अगर इस जगह पर कोई प्राकृतिक चिकित्सालय होता तो सहस्त्र-धारा की स्वास्थ्यकर जलवायु के कारण रोगियों को काफी लाभ होता, पर खुशी की बात है कि सरकार ने इस ओर ध्यान देकर कुछ वर्ष पूर्व यहाँ पर पर्यटकों की सुख-सुविधा के लिए दो विश्रामगृह बनवाए हैं। सचमुच, सहस्त्रधारा वनभोज व पिक-निक के लिए एक अत्युत्तम स्थान है। अतएव यहाँ पर हर रविवार तथा अवकाश के दिन देहरादून और राजपुर से आए सैलानियों का एक मेला-सा लग जाता है।

मसूरी

मसूरी की रमणीक नगरी न केवल देहरा घाटी में बल्कि उत्तर भारत के प्रमुख पर्वतीय पर्यटन-केन्द्रों में एक है जो अपनी प्राकृतिक सुन्दरता, आनन्दमय सामाजिक जीवन और विभिन्न मनोरंजनों के लिए देश भर में प्रसिद्ध है। अतः मसूरी को 'पर्वतों की रानी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में तो इसकी जलवायु बहुत सुखदायी होती है और तब यह पर्वतीय नगरी स्वास्थ्य लाभ तथा छुट्टियाँ बिताने के लिए एक आदर्श स्थली बन जाती है। मसूरी का नाम यहाँ पर पाए जाने वाले 'मसूर' नामक पौधे के नाम से रखा गया है। मसूरी की ऊँचाई १,९८० मीटर है और यह जगह देहरादून से ३५ किलोमीटर दूर है। मोटर मार्ग के अलावा कुछ सैलानी लोग राजपुर के पैदल मार्ग से भी यहाँ आते हैं।

मसूरी की स्थापना सन् १,८२७ में हुई जब कैप्टन यंग नामक एक साहसी सैनिक अधिकारी ने इस सुन्दर स्थली की खोजकर

यहाँ छुट्टी बिताने के लिए एक आमोद स्थली की नींव रखी थी। १,८०३ से पूर्व देहरा घाटी का सम्पूर्ण क्षेत्र गढ़वाल में था और तत्पश्चात् दस वर्ष तक यहाँ पर गोरखों का शासन रहा। सन् १,८१३ में पश्चिमी हिमालय के अन्य भागों की तरह यह क्षेत्र भी अंग्रेजों के हाथ में आ गया। शुरू-शुरू में मसूरी की रम्यस्थली अंग्रेज सैनिकों और राजाओं-महाराजाओं का आकर्षण-केन्द्र बना रहा, पर देश की स्वाधीनता के बाद यहाँ पर मध्यम वर्ग के लोग भी अत्यधिक संख्या में आने-जाने लगे।

मसूरी की सारी नगरी बड़ी सुन्दर एवं चित्ताकर्षक है। इसको देखकर ऐसा लगता है जैसे इसे पर्यटकों के आमोद-प्रमोद के लिए बनाया गया है। गर्मी के मौसम में तो यहाँ बड़ी चहल-पहल और रौनक रहती है और नित्य नए-नए खेल-तमाशों का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर नृत्य, सिनेमा, स्केटिंग, घुड़सवारी, थियेटर, संगीत, प्रदर्शनी आदि मनोरंजनों का आनन्द लिया जा सकता है। इसके साथ ही, झूलाघर से गनहिल तक का 'रोपवे' आजकल जन साधारण के लिए विशेष आकर्षण का वाहन बन गया है। यहाँ पहाड़ के ऊपर-नीचे, इधर-उधर सुविधा के अनुकूल आधुनिक ढंग के बँगले बने हुए हैं जिनकी छतें टीन की हैं। कमरों व दरवाजों में बहुधा काँच का प्रयोग किया जाता है। अनेक प्रकार के लता-कुंजों और रंग-बिरंगे फूलों ने इन बँगलों की शोभा को चार चाँद लगा दिए हैं। रात्रि के समय मसूरी देखते ही बनती है। चाँदनी रातों में गगन विहारी चन्द्रमा नभमंडल से उतर कर बाँज वृक्षों के झुरमुटों में लुकता-छिपता सितारों के साथ आँख-मिचौली खेलता है, परन्तु अंधेरी रातों में यही चन्द्रमा पर्वतरानी के झिलमिल करते सितारों में परिवर्तित होकर अपना खेल रचाता है।

मसूरी के देखने योग्य स्थानों में गनहिल, लाल टिब्बा,

कैमल्स बैंक रोड, म्यूनिसिपल गार्डन, विनोग, कैम्पटी प्रपात, मौसी प्रपात और हार्डी प्रपात हैं। बाजारों में लंढौर, कुलड़ी और लायब्रेरी (गांधी चौक) हैं। गनहिल, परी टिब्बा तथा लाल टिब्बा से बद्रीनाथ, बंदरपूंछ (जमनोत्री) और देहरादून के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। कैमल्स बैंक रोड कुलड़ी और गाँधी चौक के बीच गनहिल के पार्श्व भाग से जाने वाली सड़क का नाम है। यहाँ एक स्थान पर पर्वत की ओर देखने से ऐसा लगता है, जैसे कोई भीमकाय ऊँट मरुभूमि से भागकर यहाँ आते ही अत्यधिक शीत से जड़वत् हो गया है। म्यूनिसिपल गार्डन पिकनिक के लिए एक उत्तम स्थान है। यहाँ पर देवदार के घने ऊँचे वृक्ष, रंग-बिरंगे फूल और बच्चों के मनोरंजन के लिए झूलों व कठघोड़ों का प्रबन्ध है। विनोग नाम की वेधशाला बस्ती से दस किलोमीटर दूर है। यहाँ पर दर्शकों के लिए एक चबूतरा भी बना हुआ है जिसपर खड़े होकर यमुना नदी और देहरा घाटी की विहंगम दृश्यावली देखने योग्य है।

कैम्पटी प्रपात

कैम्पटी प्रपात देहरा घाटी का सबसे मनोरम प्रपात है जो मसूरी से आठ किलोमीटर दूर १,३५० मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ गगनचुम्बी शैलशृंगों की छाती को चीरकर दूध-सी श्वेत मोटी-मोटी तीन जलधाराएँ अविराम गति से नीचे गिरती हैं। इनमें सबसे बड़ी धारा की ऊँचाई साठ मीटर और छोटी की ऊँचाई बारह मीटर के लगभग है। इन मदमाती धाराओं के गिरने से नीचे एक कुंड भी बन गया है जिसमें स्नान आदि करने से मार्ग की शारीरिक क्लांति दूर हो जाती है। प्रपात की छल-छल करती स्वरलहरी के साथ-साथ घाटी में लह-

लहाते जलमग्न हरे-पीले धान के पौधों को देखकर ऐसा लगता है, मानो तबले के तीन ताल पर इन्द्रलोक की अप्सराएं हरी-धानी चुनरियां ओढ़े अपनी-अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन कर रही हों। दिल्ली का कोलाहलमय जीवन जब-जब मुझे पागल बना देता है और गर्मी के मौसम में लू की गर्म-गर्म लपटें मेरे शरीर को तपाने लगती हैं तब-तब अनायास मेरा मन कैम्पटी प्रपात के शांत एवं स्पन्दनहीन वातावरण में पहुँचकर विश्राम पाने लगता है। पर यह कितने खेद की बात है कि पर्वतरानी मसूरी में आकर भी नब्बे प्रतिशत सैलानी कैम्पटी प्रपात के इस प्राकृतिक वैभव से वंचित रह जाते हैं। ये लोग कृत्रिम शृंगार और चमकीली वेश-भूषा में यहाँ भी मालरोड़ के एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर काटने में ही अपने को सीमित रखते हैं। यहाँ आने पर यदि मसूरी में मालरोड ही है तो दिल्ली का कनाट प्लेस किसी तरह भी कम नहीं। काश! ये लोग प्रकृति की महत्ता को देख और समझ सकते।

कैम्पटी प्रताप के निकट ही एक झोंपड़ी बनी हुई है जिससे कभी घूं-घूं और कभी घर-घर की ध्वनि निरन्तर आती रहती है। वहाँ पहुँचकर हमने देखा कि फटे कपड़े पहने एक पहाड़ी पुरुष बाहर आ रहा था। उस समय उसका शरीर आटे से लथ-पथ था। वास्तव में उस झोंपड़ी में एक पनचक्की थी जो जल-शक्ति से चलती है। यहाँ की भाषा में इसे घर या घ्राट कहते हैं। पहाड़ो लोग दूर-दूर से यहाँ आकर गेहूं, मक्का आदि पिस-वाते हैं।

भट्टा प्रपात

कैम्पटी प्रपात एक तरह से प्राकृतिक झरना है जिसका जल

अपने आप ही पर्वतीय चट्टानों से टकराता हुआ गिरता रहता है। हमारे देश में ऐसे झरने भी हैं जिनके जल को एक स्थान पर इकट्ठा करके और फिर कुछ विशेष ऊँचाई से गिराकर बिजली पैदा की जाती है। मसूरी में भट्टा नाम का एक ऐसा ही झरना है जहाँ से देहरादून और मसूरी को बिजली मिलती है। यहाँ पर पानी के वड़े-वड़े तालाब हैं जिसका जल एक नहर से सीढ़ियों द्वारा यहाँ बड़ी सुन्दरता द्वारा लाया गया है। इसके पश्चात् जल को बड़े-बड़े पाइपों द्वारा दूसरे तालाबों में ले जाया जाता है, जो बिजली पैदा करने वाले यन्त्रों को चलाते हैं। इस प्रकार नदियों की भाँति झरने, प्रपात आदि भी देश की उन्नति के लिए उपयोगी होते हैं।

मौसी प्रपात

कैम्पटी व भट्टा की भाँति मौसी प्रपात भी मसूरी का एक दर्शनीय प्रपात है। इसकी विशेषता यहाँ घनी हरियाली से आच्छादित एक तंग घाटी में कल-कल करते मौसी प्रपात का शांत वातावरण है। हार्डी प्रपात भी मौसी प्रपात से मिलता-जुलता है जिसके दुर्गम मार्ग से ही इसका यह नाम रखा गया। यह प्रपात विन्सेंट हिल की दक्षिण-पश्चिमी ढलान में स्थित है।

कालसी

कालसी देहरा घाटी की सबसे प्राचीन और ऐतिहासिक स्थली है, जो देहरादून-चकराता मार्ग में अमलावा और यमुना नदियों के निकट स्थित है। यहाँ का मुख्य आकर्षण अशोककालीन एक ऐतिहासिक शिलालेख है। यह शिला तीन मीटर ऊँची, तीन

मीटर लम्बी व ढाई मीटर चौड़ी है। इसके दाईं ओर एक हाथी का रेखाचित्र उत्कीर्ण है जिसके पाँव में कुछ लिखा हुआ है। इसलिए कुछ लोग इसे चित्रशिला भी कहते हैं। इस शिलालेख का पता पहले-पहल सन् १,८६० में फारस्ट नामक एक अंग्रेज अधिकारी ने लगाया था। इस शिलालेख के अनुसार कालसी किसी समय एक समृद्ध नगरी थी। भागीरथी, यमुना और सतलुज की उपत्यकाओं में रहने वाले निवासी व्यापार आदि के लिए यहीं से होकर नीचे मैदानों में जाते थे। उस समय यह क्षेत्र 'सानु प्रदेश' के नाम से प्रचलित था, परन्तु अब कालसी चकराता तहसील का एक छोटा-सा कस्बामात्र है जहाँ पर अमलावा नदी की एक छोटी-सी नहर है। लाखामंडल भी इस क्षेत्र का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है।

यमुना ब्रिज

देहरादून-चकराता मार्ग पर कालसी से पूर्व यमुना ब्रिज का सुन्दर दृश्य देखने को मिलता है। यह पुल लक्ष्मण झूला पुल की शैली पर ही बनाया गया है। इस तरह यमुना ब्रिज को हम 'छोटा लक्ष्मण झूला' भी कह सकते हैं। यहाँ पर यमुना की क्षीण श्यामल धारा सैकड़ों शिलाखंडों के ऊपर से कल-कल की ध्वनि में तीव्र गति से प्रवाहित होती है। नीलवर्ण यमुना की इस अनूठी छवि को देखने के लिए हर रोज कुछ लोग देहरादून व कालसी से यहाँ आते रहते हैं। यमुना ब्रिज देहरादून से ४५ किलोमीटर दूर है।

चकराता

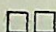
मसूरी की तरह चकराता भी देहरा घाटी का एक मनोरम स्थान है। इसकी प्राकृतिक सुन्दरता और जलवायु बहुत ही अच्छी

है जिसके कारण कई पर्यटक इसकी तुलना स्विट्ज़रलैंड से करते हैं। वस्तुत: चकराता एक पहाड़ी का नाम है जिससे इस कस्बे का नाम रखा गया। होटलों आदि के अभाव में यहाँ पर बहुत ही कम यात्री आते हैं और जो आते भी हैं, वे भी दो-चार दिन ठहरकर लौट जाते हैं। आजकल यहाँ पर भारतीय सेना की कुछ टुकड़ियां रहती हैं। चकराता जौनसार-बावर क्षेत्र का एक प्रमुख स्थान है। सभ्य जगत् से दूर, पुराने संस्कारों से बंधे-जकड़े यहाँ के लोगों की कोई झलक यदि आप देखना चाहें तो इसे आप चकराता के लकड़मंडी बाजार में सुविधा से देख सकते हैं। इन लोगों में अभी भी पाँडवों की तरह बहुपति प्रथा विद्यमान है। इसके अतिरिक्त बहुपति विवाह हमारे देश में हिमाचल के किन्नौर और उत्तरकाशी के रवाई क्षेत्र में भी प्रचलित है, जो दोनों ही इसके पड़ोसी क्षेत्र हैं। वास्तव में इन क्षेत्रों में यातायात, शिक्षा आदि की सुविधाएं बहुत ही कम हैं। ये लोग छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं और इनका मुख्य व्यवसाय खेती ही है, पर ये लोग बड़े ही हंसमुख, ईमानदार, सीधे-साधे और मेहनती होते हैं।

चकराता के देखने लायक स्थानों में टाइगर प्रपात और देववन हैं। टाइगर प्रपात की विशेषता यह है कि इसका जल साठ-सत्तर मीटर की ऊँचाई से सीधा कुंड में गिरता है। इसको देखकर ऐसा लगता है, जैसे कोई पहाड़ी नदी चोटी से कलाबाजी लगा रही है। इस प्रपात के गिरने से नीचे एक कुंड भी बन गया है जिसमें यात्री तैरने का भी आनन्द ले सकते हैं। देववन पर्वत चकराता का सबसे हरा-भरा एवं सुन्दर पर्वत है, जो चकराता-शिमला मार्ग पर स्थित है। कहते हैं पाँडवों का जन्म गंधमादन क्षेत्र के पाँडुकेश्वर में हुआ था और उत्तरकाशी में उनके विनाश के लिए जतुगृह बनाया गया था। वहाँ से वह जिस एकचक्रा नगरी में पहुँचे थे, वह आज चकराता के नाम से प्रसिद्ध है।

१२

बर्फ से ढकी हिमरानी मसूरी



ग्रीष्म ऋतु में मसूरी एक रम्यस्थली है ही, परन्तु शिशिर के ठन्डे मौसम में भी बर्फ से ढकी हिमरानी मसूरी की अद्‌भुत एवं सलोनी छटा को जो कोई एक बार देख लेता है उसपर उसकी अमिट छाप पड़ जाती है। शीतकाल के आरम्भ होते ही मेघराज अपने दल-बल सहित मसूरी की घाटियों और चोटियों पर मंडराने लगता है। एक पर एक झुकी पर्वत-श्रेणियाँ दिनों-सप्ताहों तक बादलों की लपेट में आकर आंखों से ओझल रहती हैं और जब कोई हिमानी झोंका आपके शरीर के खुले अंग से छू जाए तो ऐसा लगता है, जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। गर्मियों की तरह सर्दियों में यहाँ सड़कों, चौराहों और बाजारों में लोगों की चहल-पहल नहीं रहती। तब चारों ओर एक विचित्र-सा प्रिय सन्नाटा छाया रहता है। यही तो यहाँ का एकमात्र शांत वातावरण है जो व्यस्तता और भीड़-भाड़ से मुक्त मसूरी को अधिक चित्ताकर्षक बना देता है।

सुहावना हिमपात

यहाँ पर हिमपात का मौसम प्राय: दिसम्बर के शुरू से आरम्भ होकर फरवरी के अन्त तक चलता है। कभी-कभी मार्च के महीने में भी बर्फ गिरने लगती है। हिमपात के दिनों में जब कभी मेघराज का मन अपनी मतवाली रानी मसूरी को भरपूर

शृंगार करने के लिए मचल उठता है तब यहाँ के व्योममंडल में एक विस्तृत हल्की सफेद-सी छा जाती है। सारा वातावरण एक मोहक स्निग्धता में डूब जाता है। चारों तरफ शांति विराजती है। वायु के धीमे प्रवाह में शीत ऋतु में भी वसन्तागमन का आभास होने लगता है। अकस्मात् ही आकाश से कभी रुई के फायों की तरह हल्की-फुल्की और कभी मोटी-दानेदार चीनी की तरह सफेद नन्हीं-नन्हीं हिम-फूहारें बरसने लगती हैं। देखते-देखते बर्फ के ये छोटे-छोटे कण धुनी हुई रुई के गोलों में परिवर्तित होकर जुही के पुष्पों की निरन्तर वर्षा-सी करने लगते हैं।

मैदानों में रहने वाले लोग सोचते होंगे कि बर्फ एक मुसीबत है, क्योंकि इसमें आना-जाना मुश्किल हो जाता है। परन्तु ऐसी बात नहीं। हिमपात होते ही मसूरी के लोग छोटी-छोटी टोलियों में प्रकृति के खुले आंगन में एकत्रित होने लगते हैं। मज़े की बात यह है कि बर्फ में वर्षा की तरह कपड़े, कोट आदि खराब नहीं होते। ज़रा-सा झाड़-पोंछ लो तो वैसे-के-वैसे लगते हैं। ताजा गिरी हुई बर्फ दो-तीन दिन तक इतनी नर्म रहती है कि जिसमें आप सुविधा से घूम-फिर सकते हैं। जब तक बर्फ पिघलकर पानी नहीं होती तब तक न इससे आपका पांव भीग सकता है और न ही जूता, पैंट अथवा पायजामा।

दिन के हिमपात में दर्शकों की खुशी की कोई सीमा नहीं रहती। कुछ ही समय में बर्फ मसूरी की सारी नगरी को अपनी व्यापक सफेद चादर में ढक लेती है। लाल टिब्बा, लंढौर, कुलड़ी, गनहिल व गांधी चौक में बने बँगले, सुन्दर होटल, बिजली के तार-खम्भे तथा पेड़ों की डालियों और पत्तों पर हिम की एक कोमल पर्त चढ़ जाती है। तब बर्फ से ढकी मसूरी अपना उन्मुक्त वैभव बिखेरकर उल्लास से इठलाती हुई मुस्करा उठती है। हिमरानी की इस अद्भुत एवं सलोनी छटा की एक झलक कभी

भी आपको देखने को मिल जाए तो उसे आजीवन भुलाया नहीं जा सकता।

परन्तु चाँदनी रातों के हिमपात की अपनी अलग शोभा है। उस समय आकाश से गिरती हुई हिम-फुहारों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे शशिराज उद्धार होकर अपनी विशाल झोली से रजत-रूपहली चाँदनी बिखेर रहा है। सारा जड़ जगत् रस-विभोर होकर शांत हो जाता है। उस शांत वातावरण में मकानों की छतों से हिम के असंख्य कणों के गिरने से एक अलौकिक स्वर-लहरी सुनाई देती है। लगता है, मानो कोई स्वर्ग-सुन्दरी अपने सितार पर विहाग का राग द्रुत लय से बजा रही हो। थोड़ी-सी देर में यह सारा-का-सारा क्षेत्र चंदा की चाँदनी में नहाकर ऐसा दिखाई देता है, जैसे परियों का देश है।

बर्फ की बहार

मसूरी में इस वर्ष का पहला हिमपात ११ दिसम्बर को हुआ और उससे अगले दिन भी दिनभर बर्फ गिरती रही। उस दिन सुबह उठकर देखा कि मसूरी बर्फ से ढकी हुई थी दूर-दूर तक। कुछ खा-पीकर तथा गर्म कपड़ों से लदकर हम सभी बर्फ की बहार का आनन्द लूटने के लिए होटल से बाहर आए। बाहर आते ही हमने देखा कि चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ बिछी हुई थी—पहाड़ों की चोटियों पर, मकानों की छतों पर, ढलानों पर, घाटियों में, बिजली के तार-खम्भों पर, पेड़ों की डालियों और पत्तों पर, सड़कों पर तथा भूमि पर उगी हुई हरी-हरी घास पर। बर्फ की बहार में रसविभोर होकर एक ओर बाँज के वृक्ष मस्ती से झूम रहे थे तो दूसरी ओर पर्वतांचल में बने टीन के छप्परों वाले सलामीदार मकान एस्किमों के इग्लू-से लग रहे थे।

गिरती हुई बर्फ का दृश्य सचमुच ही बड़ा विमुग्धकारी होता है। जो बादल मैदानों में पानी की बूदें बरसाते हैं वही अधिक ठंड में पहाड़ों में बर्फ बनकर गिरने लगते हैं, कभी छोटे और कभी बड़े फायों या गुच्छों के रूप में। वास्तव में आकाश का तापमान जब तक शून्य डिग्री (से०) से नीचे नहीं होता, बादल जल बरसाते हैं और यदि तापमान शून्य से नीचे हो, परन्तु धरती का तापमान उतना न हो तो बर्फ के कण ओलों के रूप में नीचे आते ही विलीन होकर जल बरसाते हैं। धरती के तापमान के और अधिक गिरने से बादल हिमकण यानी बजरी का रूप ले लेते हैं। हिमपात होते समय यदि कहीं हल्की-सी वायु भी चल रही हो तो बर्फ के फाए अथवा गुच्छे हवा में तैरते हुए तिरछे चलकर धीरे-धीरे भूमि पर उतरते हैं। इनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो हिमहंस बर्फीलो झील में शालीनता से तैर रहे हों।

बर्फ के खेल

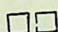
यद्यपि शिमला, कुफ़री, गुलमर्ग व खिल्लनमर्ग की भाँति मसूरी में स्कींग या शींग तथा आइस स्केटिंग का अभी तक कोई विशेष प्रबन्ध नहीं, फिर भी यहाँ के कुछ उत्साही युवक, युवतियाँ और बच्चे बर्फ से खेलकर आनन्द लूटते हैं। स्लेजिंग बच्चों के लिए बर्फ का एक प्रिय खेल है। अतः हिमपात होते ही बच्चे अपनी-अपनी स्लेजों को उठाकर कुलड़ी और लाल टिब्बा की ढलानों पर पहुँच जाते हैं। स्लेज लकड़ी की बनी होती है। इसके आगे रबड़ लगी होती है जो मुड़ते समय ब्रेक का काम देती है। इसके नीचे कोई पहिया नहीं होता जिससे इसका नाम 'स्लेज' पड़ गया है। वस्तुतः स्लेज बिना पहिए की उस गाड़ी को कहते हैं

जिसे उत्तरी ध्रुव में बर्फ पर कुत्ते या रेण्डियर चलाते हैं। ढलानों पर पहुँचकर बच्चे स्लेजों पर बैठकर तेज़ी से फिसलते हुए कुछ ही मिनटों में नीचे पहुँच जाते हैं। नीचे जाकर वे अपनी-अपनी स्लेजों को फिर से हाथों में उठाकर हिममंडित मार्गों से बार-बार नीचे की ओर फिसलते रहते हैं। स्लेजिंग करते हुए किसी बालक को दूर से देखकर ऐसा लगता है, जैसे पर्वत से कोई बाल-झरना झूमता-इठलाता हुआ आ रहा है।

स्लेजिंग के अतिरिक्त लायब्रेरी के निकट गाँधी चौक के खुले समतल मैदान में कुछ मनचले युवक-युवतियां एकत्रित होकर बर्फ के मोटे-मोटे गोले बनाकर एक-दूसरे पर फैंकते-मारते हैं। पर मज़े की बात यह है कि इससे कोई विशेष चोट नहीं लगती, क्योंकि ताज़ा बर्फ रुई की तरह नर्म और हल्की-फुलकी होती है। गर्मियों के दिनों मैदानों में जिस बर्फ को हम पानी में मिलाकर पीते हैं उसकी भाँति यह सख़्त और भारी नहीं होती। साथ ही, यहाँ के कलाकार पत्थर-मिट्टी की मूर्तियों की तरह बर्फ के कलात्मक पुतले बनाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। इनको देखकर ऐसा लगता है, जैसे ये मुखर हैं और कुछ बोल रहे हैं। ताजा गिरी बर्फ से इन पुतलों को बनाने में कोई खास समय नहीं लगता, घण्टे-आध घण्टे में ही ये बनकर तैयार हो जाते हैं।

१३

पौड़ी-गढ़वाल का यात्रा-आनन्द



पर्यटन मनोरंजन भी है, शिक्षा भी और नशा भी। जिस किसी व्यक्ति को इसका नशा एक बार लग जाए तो फिर टूटता नहीं। घर पर बैठे-बैठे ऐसा लगता है जैसे वह कह रहा हो—"चलो, यहाँ बैठे क्या कर रहे हो।" प्रकृतिदर्शक के नाते पर्यटन का एक ऐसा ही आह्वान पाकर हम २६ जून की सुबह को दिल्ली से बस द्वारा मेरठ, गढ़मुक्तेश्वर, चाँदपुर होते हुए सन्ध्या के झुरमट में नजीबाबाद पहुँचे, जहाँ से आगे कोटद्वार के जंगल शुरू हो जाते हैं।

जुगनुओं की बस्ती में

नजीबाबाद से चलते समय हमें कुछ देर हो गई और हमारे देखते-देखते रात की कालिमा ने अपने आवरण में सब कुछ ढक दिया। बस्ती के ओझल होते ही हमारे चारों ओर अन्धेरा-ही-अन्धेरा था। सड़क पर भी बिजली के अभाव में हमें अपनी बस की हेडलाइट की रोशनी के अलावा और कुछ भी तो दिखाई न दे रहा था। पर प्रकृति की लीला विचित्र है। रात्रि के गहन अन्धकार में इस वीरान-सूने पथ पर सफ़र करते हुए हमें स्थल-स्थल पर छोटी-बड़ी टोलियों में सैकड़ों जुगनू देखने को मिले जो सितारों की तरह टिमटिमा रहे थे। इससे पूर्व हमनें इनको इतनी बड़ी संख्या में कभी न देखा था। प्रकृति के ये नन्हे कीट

हमारे लिए कितने उपयोगी हैं, इसका पता हमें तब लगा जब ये बार-बार उड़कर अपने झिलमिलाते प्रकाश से अन्धकार रूपी दानव को चुनौती देते हुए हमारा ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे और इस तरह जुगनुओं की बस्ती से होते हुए हम रात को नौ बजे तक कोटद्वार पहुँच गए।

कोटद्वार

कोटद्वार प्राचीन काल से ही सारे गढ़वाल के आवागमन का मुख्य द्वार रहा है। इसका उल्लेख स्कन्द पुराण के केदारखंड में भी मिलता है। गढ़वाल का सारा क्षेत्र किसी समय कई गढ़ों अथवा कोटों में बंटा हुआ था जिससे इस स्थान को 'कोटद्वार' को संज्ञा दी गई। आजकल यह जगह पौड़ी जिले की एक प्रमुख नगरी है और रेल का अंतिम स्टेशन होने के कारण यहाँ से पौड़ी, लैंसडौन, श्रीनगर, हरद्वार, कण्वाश्रम, कॉरबेट नेशनल पार्क आदि दर्शनीय स्थानों को अलग-अलग मार्ग जाते हैं। वैसे कोटद्वार से पौड़ी जाने के लिए दो सड़क-मार्ग हैं, एक लैंसडौन से और दूसरा दुगड्डा से। कोटद्वार में रात्रि-विश्राम के लिए दो-तीन होटलों के अलावा एक अच्छी-सी धर्मशाला भी है।

यात्रा का आनन्द

रात को कोटद्वार की धर्मशाला में विश्रामकर हम अगले दिन सुबह उठते ही एक टैक्सी में सवार होकर लैन्सडौन के लिए रवाना हुए। चलते समय मौसम सुहावना था। और मन्द-मन्द शीतल बयार चल रही थी जिसके स्पर्शमात्र से ही हमें यह विश्वास होने लगा कि हम किसी पर्वतस्थली के निकट आ पहुँचे

हैं। हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जा रहे थे प्रकृति का अधिक मधुर रूप-रंग दिखाई दे रहा था। पड़े-पौधे, फल-फूल, खेत-खलिहान, झरने-प्रपात, नदी-नाले सभी कुछ मनोहर था। प्रकृति नटी के विभिन्न रूपों को देखते-निहारते हुए हमें एक विशेष प्रकार का सुख अनुभव हो रहा था जो शब्दों में अवर्णनीय है। वैसे तो हमने अपने जीवन के पिछले तीस-पैंतीस वर्षों में हिमालय के ऐसे अनेक यात्रा-सुखों का रसपान किया है, मगर प्रकृति रानी की यह विचित्र लीला ही समझिए कि हर स्थल पर उसका नित्य नया ही रूप सबको बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

अन्य पहाड़ी मार्गों की भाँति यहाँ का मोटर-रोड भी ढेढ़ा-मेढ़ा और ऊँचा-नीचा है। इसके एक ओर खड्ड में सैकड़ों पत्थर-चट्टानों के संग उछलता-कूदता खो नदी का जल वक्र गति से बहता चला जा रहा है मैदानों की ओर तो दूसरी तरफ हरीतिमामंडित पहाड़ियाँ, ऊँची, अति ऊँची उठती जा रही हैं। इस तरह टैक्सी में बैठे-बैठे चलचित्र-सी हर क्षण बदलने वाली प्राकृतिक सुषमा का आनन्द लेते हुए हम कुछ देर के लिए दुगड्डा में शील नदी पर बने झूला पुल पर रुके। दुगड्डा से तात्पर्य दो गाड़ों यानी दो छोटी पहाड़ी नदियों के संगमस्थल से है। शील नदी के अलावा यहां पर लंगूर नाम की एक और नदी भी बहती है।

दुगड्डा

दुगड्डा कोटद्वार से बारह किलोमीटर दूर समुद्र-तल से कोई पाँच-छः सौ मीटर ऊँचा है। यहाँ की जलवायु बहुत ही अच्छी है और हर ऋतु में गुलाबी मौसम धरती पर उतरा दिखाई देता है। इसके साथ ही, चारों ओर शाल के घने वृक्षों से आच्छा-

दित पहाड़ियों के बीच दुगड्डा की छोटी-सी बस्ती स्वर्ग-सी सुन्दर लगती है। मेरी अपनी प्रबल इच्छा है कि अवकाश प्राप्ति के बाद मैं अपना शेष जीवन यहीं बिताऊँ, पर हरि की इच्छा बलवान है।

फतेहपुर

दुगड्डा से चलकर हमारी टैक्सी फतेहपुर की ओर आगे बढ़ी। इस मार्ग पर बढ़ते हुए कुछ ही दूरी पर हमारे बायें ओर एक सड़क दिखाई दी जो सीधी पौड़ी चली जाती है। फतेहपुर दुगड्डा से पाँच किलोमीटर दूर एक छोटा-सा पहाड़ी स्थान है जहाँ से लैन्सडौन को एक पैदल-मार्ग भी जाता है। आजकल यहाँ पर चार-पाँच दुकानों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। सम्भवतः मोटर युग से पहले जब लोग पैदल अथवा घोड़ों पर लैन्सडौन जाते थे तब इस स्थली का काफी महत्व रहा होगा। यहाँ से पर्वत का तीखा आरोहण शुरु होता है जिसपर बार-बार चक्कर काटती हुई हमारी टैक्सी लैन्सडौन की छावनी से होती हुई गाँधी चौक के एक छोर पर जाकर खड़ी हो गई।

लैंसडौन

मसूरी व चकराता की भाँति लैंसडौन भी प्रकृति की एक रमणीय स्थली है जो अपनी अनूठी सुषमा के लिए सारे गढ़वाल में प्रसिद्ध है। अतः हम लैंसडौन को 'गढ़वाल की रानी' के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। एकान्त और शान्ति चाहने वाले व्यक्तियों के लिए तो यह एक अत्युत्तम जगह है, परन्तु अच्छे होटलों और मनोरंजन के साधनों की कमी के कारण यहाँ पर

बहुत ही कम यात्री आते हैं। यह स्थान कोटद्वार से ४१ किलोमीटर दूर है और सागर के तल से १,८०० मीटर ऊँचा, जिससे ग्रीष्म ऋतु में भी यहाँ पर प्रायः हर समय लुभावना मौसम रहता है। हिमालय के अन्य ग्रीष्मावासों की तरह इसकी स्थापना भी अंग्रेजों के समय में ही हुई थी। लैंसडौन में छावनी के कारण इसका अधिक विकास एवं विस्तार नहीं हो पाया जिससे इसकी छोटी-सी बस्ती गांधी चौक के आसपास ही बसी हुई है जिसमें एक छोटा-सा बाजार, डाक-तारघर, एक छविगृह तथा आवास के लिए दो-तीन साधारण स्तर के होटल हैं।

लैंसडौन की शोभा चीड़ की वृक्षावली में है। यहाँ पर आप कहीं भी जायें, चीड़ के हरे सुन्दर पेड़ आपका मन मुग्ध कर लेंगे - चोटियों में, खाइयों में तथा बँगलों के इर्द-गिर्द चीड़-ही-चीड़ के वृक्ष प्रहरी की तरह सीना ताने खड़े दिखाई देते हैं। चीड़ अपने निकट किसी दूसरे पेड़ अथवा वनस्पति को देखना पसन्द नहीं करता। इसी कारण इसके जंगल प्रायः घने नहीं होते। चीड़ का वृक्ष देवदार से कुछ मिलता-जुलता है। इसकी नुकीली और सुई जैसी पतली-पतली पत्तियां होती हैं जो देखने में बड़ी अनोखी लगती हैं। वास्तव में चीड़ का पेड़ बड़ा लाभदायक होता है जिसका सबसे बड़ा फायदा उसकी वायु से है जो फेफड़ों के रोगियों के लिए बड़ा उपयोगी है। सुबह-शाम यहाँ चीड़ के जंगलों में घूमते समय ऐसा लगता है जैसे हम गढ़वाल की रानी लैंसडौन की संजीवनी वायु का अमृतपान कर रहे हैं। साथ ही, चीड़ की लकड़ी रेल के स्लीपरों के काम में आती है और इससे तारपीन का तेल, गोंद, गुग्गल, बरोजा आदि मिलता है। यहाँ के मकानों में भी चीड़ की लकड़ी का बहुधा प्रयोग किया जाता है।

टिफिन टाप लैंसडौन की सबसे ऊँची चोटी है जहाँ पर

दर्शकों के लिए एक चबूतरा भी बना हुआ है। जिस दिन आकाश साफ़ हो, इसपर खड़े होकर आप एक ओर जहरीखाल और कोट-द्वार का विहंगम दृश्य देख सकते हैं तो दूसरी ओर आपके सन्मुख केदारनाथ और बद्रीनाथ के शिखर अपना भुजपाश खोलकर आह्वान करते-से प्रतीत होते हैं। जहरीखाल लैंसडौन से छः किलोमीटर दूर एक पहाड़ी कस्बा है जिसमें एक डिग्री कालिज है। यहाँ पढ़ने के लिए कई विद्यार्थी लैंसडौन और गुमखाल तक से हर रोज यहाँ आते हैं। लैंसडौन में गढ़वाल भवन का सुसज्जित मैस भी देखने लायक है। वैसे यह मैस जनता के लिए खुला नहीं है पर फिर भी विशेष अनुमति से इसे देखा जा सकता है।

लैन्सडौन में चार दिन रहकर हम प्रथम जुलाई की प्रातः को बस में सवार होकर पौड़ी के लिए रवाना हुए। इस मार्ग पर चलते हुए हमारी बस कुछ देर के लिए पहले जहरीखाल और फिर गुमखाल रुकी। खाल यहाँ की भाषा में पर्वतीय ढाल पर स्थित समतल मैदान को कहते हैं। पौड़ी-गढ़वाल में कई खाल हैं जिससे इस क्षेत्र को 'खालों की धरती' की संज्ञा दी जा सकती है। गुमखाल में दुगड्डा से पौड़ी जाने वाली सड़क भी आ मिलती है। गुमखाल से आगे का मार्ग निरन्तर उतराई का है जिसपर बार-बार चक्कर काटते हुए हम पर्वत की तलहटी में स्थित सतपुली पहुँच गए।

नीलवर्ण नयार

सतपुली की सुन्दरता पश्चिमी नयार में है जो कल-कल करती यहाँ मन्थर गति से बह रही है। सारी बस्ती नदी के बाएं तट पर बसी हुई है। यहाँ की ऊँचाई तीन-चार सौ मीटर के लगभग होगी जिससे उस समय वहाँ पर मैदानों-जैसी गर्मी थी।

पौड़ी और कोटद्वार को जाने-आने वाले सभी यात्री चाय आदि के लिए कुछ समय तक यहाँ अवश्य रुकते हैं। हमारी बस के रुकते ही मैं भी बस से उतरकर सीधा नदी के तट पर पहुँचा और अपने आराध्य पिताजी के भस्मी के अवशेषों को उसकी नीलवर्ण पावन धारा में प्रवाहित कर उन्हें तब तक भावभीनी निगाहों से देखता रहा जब तक वे भस्मीपुंज नीलवर्ण नयार की पावन धारा में विलीन नहीं हुए और छोड़ गए अपने पीछे हमारे लिए एक उत्तम सीख—"महाजनो येन गतः सः पन्थाः।" पुराणों में नयार नदी का नवालिका नाम से उल्लेख किया गया है। कहते हैं कि इसी नदी के तट पर व्यास-घाट नामक स्थान पर व्यासजी ने तपस्या की थी। दरअसल नयार गंगा की एक सहायक नदी है जो देव प्रयाग और ऋषिकेश के बीच व्यास चट्टी पर उसमें जा मिलती है। पश्चिमी नयार में कभी-कभी काफी बाढ़ आ जाती है और तब यहाँ जान-माल की बड़ी हानि होती है। कुछ वर्ष हुए वर्षा ऋतु में एक बार यहाँ इतनी बाढ़ आई कि सतपुली की सारी बस्ती, सड़क पर खड़ी बसें, ट्रक आदि सब कुछ नदी की तेज़ धारा में बह गया।

सतपुली से आगे फिर चढ़ाई आरम्भ हो जाती है। इस मार्ग पर थोड़ा-सा आगे बढ़ते ही हमें सड़क के बाईं ओर खड्ड में छल-छल करती पूर्वी नयार की एक क्षीण धारा दिखाई दी जो हमारे साथ काफी दूर तक रही। ये दोनों ही धाराएं नयार नामक स्थान से निकलती हैं जिससे पश्चिमी क्षेत्र में बहने वाली धारा का नाम पश्चिमी नयार और पूर्वी क्षेत्र में बहने वाली नदी का नाम पूर्वी नयार रखा गया जो सतपुली से कुछ ही आगे जाकर परस्पर जा मिलती हैं। इस समूचे क्षेत्र में आने-जाने के लिए सड़क पर छोटे-छोटे सात पुल बने हुए हैं जिससे अंतिम पुलिया का नाम 'सतपुली' उपयुक्त ही रखा गया है। सतपुली के बाद

हम कुछ देर के लिए नौगाँवखाल में रुके और दोपहर तक पौड़ी पहुँच गये।

पौड़ी

पौड़ी गढ़वाल मंडल का एक ज़िला है। साधारणतया गढ़वाल को दो भागों में विभक्त किया जाता है, एक पौड़ी-गढ़वाल और दूसरा टिहरी-गढ़वाल। पौड़ी-गढ़वाल में पौड़ी और चमोली नाम के दो ज़िले हैं जबकि टिहरी-गढ़वाल में टिहरी और उत्तर-काशी। पौड़ी नगरी की आबादी बीस-पच्चीस हजार के लगभग होगी। देश के विभाजन के बाद यहाँ पर कपड़े आदि के व्यापार के लिए कुछ पंजाबी दुकानदार भी आकर बस गए हैं। लैंसडौन की तरह पौड़ी में भी पर्यटकों की सुख-सुविधा का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। पर खुशी की बात है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने इस ओर ध्यान देकर पौड़ी को अब पर्यटन-केन्द्र घोषित कर दिया है और यहां पर क्षेत्रीय पर्यटन कार्यालय स्थापित हो गया है जिसमें आवास, भोजन आदि की समुचित व्यवस्था की गई है।

पौड़ी से तात्पर्य पहाड़ों की सीढ़ियों से है। सचमुच ही, यहाँ पर हिमालय की श्रेणियों का जैसा पौड़ी-नुमा दृश्य दिखाई देता है वैसा शायद ही कहीं और दृष्टिगोचर हो। पर हमें तो इससे भी बढ़कर चौखम्भा व नीलकंठ नामक रजत रुपहले देवरम्य शिखरों ने आकृष्ट किया जो बालरवि के सुनहले प्रकाश में देखते ही बनते हैं। समुद्र की सतह से पौड़ी की ऊँचाई १, ५९० मीटर है। गढ़वाल के अन्य भागों की भाँति यहाँ भी उद्योगों के अभाव में नियोजन एक समस्या है जिससे यहाँ के लोगों का जीवन-स्तर काफी नीचा है। इस हेतु पौड़ी में एक ओर जहाँ अब सेब आदि फलों के पौधे लगाए जा रहे हैं वहाँ दूसरी ओर शोधकार्यों के

लिए यहाँ के नागदेव वन में वनस्पति उद्यान लगाने का कार्यक्रम आरम्भ हो चुका है। इस दिशा में यहाँ पर पर्यटन उद्योग के विकास के लिए भी कुछ और अधिक सुख-सुविधाएं जुटाने की आवश्यकता है।

चौखम्भा का विराट् स्वरूप

पौड़ी में रात का भोजन खाकर हम सो गए। रात भर बिजली चमकती रही और वर्षा की मोटी-मोटी बूंदें बरसती रहीं जिसकी ध्वनि हमें टीन की छतों के कारण साफ सुनाई पड़ रही थी। प्रातः उठकर जैसे ही हमने अपने कमरे का किवाड़ खोल कर बाहर झाँका तो हम दंग रह गए। सामने, हमारे बिल्कुल ही सामने चौखम्भा का विराट् स्वरूप खड़ा था, मानो इन्द्रराज अपने श्वेत संगमरमर के सिंहासन पर विराजमान हो रहे हों। साथ ही, बाईं ओर नीलकंठ की हिमानी श्रृंगावली शिव-लिंग सी प्रतीत हो रही थी। परन्तु चौखम्भा का आकार-प्रकार तो एकदम अद्भुत था, जो त्रिकोण न होकर चौकोर वर्गाकार कमल रूप मेरु पर्वत है। समुद्र की सतह से इसकी ऊँचाई ७,०२६ मीटर है और यह गर्वोन्नित शिखर केदारनाथ और बद्रीनाथ के मध्य में अवस्थित है।

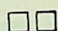
उस समय चौखम्भा का हिमानी शिखर बालरवि के सुनहले प्रकाश से खेल रहा था और हमें अपनी अलौकिक सतरंगी आभा का दिग्दर्शन करा रहा था। मेरा मन और मस्तिष्क देवरम्य हिमालय के इस विराट् स्वरूप को देखकर आनन्द से पुलकित हो उठा। जीवन में ऐसे ही कुछ क्षणों को मैंने सबसे अधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान माना है जब आत्मा का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और मानव उस समय

अपने अस्तित्व को भूल बैठता है और अनुभव करने लगता है कि प्रकृति कितनी महान एवं उदार है और उसके सामने मानव कितना क्षुद्र एवं संकीर्ण । हिमालय की विराटता और महानता के समक्ष हम नत-मस्तक थे, यही तो है भारत का मुकुट, हमारे राष्ट्र का प्रहरी, हमारी संस्कृति का रक्षक तथा गंगा-यमुना का पोषक। यदि हिमालय न होता तो आज भारत भी न होता। सम्भवतः इन्हीं बातों को ध्यान रख महाकवि जयशंकर प्रसाद की लेखनी से अनायास ही यह पंक्तियाँ फूट निकली होंगी :—

"हिमाद्रि तुँग-शृंग से, प्रबुद्ध, शुद्ध, भारती ।
स्वयं प्रभा समुज्जवला, स्वतन्त्रता पुकारती ।।"

१४

हिमालय की रंगस्थली उत्तराखंड



गिरिराज हिमालय की अनेक ऊँची-ऊँची चोटियाँ बर्फ का श्वेत मकुट पहने हमारे देश के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक असम, नेपाल, कुमाऊँ, गढ़वाल, हिमाचल, कश्मीर आदि राज्यों में दूर-दूर तक फैली हुई हैं जिनको लम्बाई २,४०० किलोमीटर और चौड़ाई १६० से ४०० किलोमीटर तक है। यह विशाल पर्वतराज न केवल भारत में बल्कि समस्त संसार में पर्वतारोहण, हिममानव की खोज, वन्य पशु का शिकार तथा अपने देवरम्य प्राकृतिक वैभव के लिए आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बना हुआ है। सचमुच ही, हिमालय नैसर्गिक सुन्दरता और विराटता की खान है। सूर्योदय होते ही घाटियों में लाखों सतरंगी पुष्प खिलते हैं, रश्मियाँ झील-ताल-नदियों में सोना बिखेरती हैं, हरियाली शीतल-मन्द समीर में मादकता भरती है और बर्फीली चोटियाँ बालरवि की सुनहली किरणों में चमक उठती हैं।

अति प्राचीन काल से धर्मपरायण जनता, साहसी पुरुष और कला प्रेमी मानव को हिमालय के विराट् सौन्दर्य और गौरव ने आकृष्ट किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य तथा साँस्कृतिक धरोहर से ओतप्रोत उत्तराखंड मुकुटमणि हिमालय की सबसे मनोहर एवं महत्वपूर्ण रंगस्थली है। हमारे देश के इतिहास में इसका वही स्थान है जो मेरूदंड का मानव शरीर में हैं। इसके बिना भारत का साँस्कृतिक इतिहास कोई अर्थ नहीं रखता। वस्तुतः इसका प्रमुख आकर्षण इसके देवरम्य नैसर्गिक स्वरूप में है जो

यहाँ पर जगह-जगह हिमानी चोटियों, दिव्य घाटियों, विशाल उपत्यकाओं, गिरि कन्दराओं, शाँत सरोवरों, चंचल नदियों, फेनिल झरते प्रपातों, प्रेरक प्रयागों, देवदार-चीड़ के हरित वनों, मखमली बुग्यालों, सतरंगी पुष्पों, सीढ़ीदार खेतों तथा पर्वतीय ढालों व खालों पर बसे छोटे-छोटे गाँवों में देखने को मिलता है जो अमरनाथ, शेषनाग, अल्पत्थर, मुक्तिनाथ, कैलाश-मान सरोवर जैसे कुछ स्थानों को छोड़कर न तो कश्मीर में उपलब्ध है और न ही हिमाचल, असम, नेपाल अथवा हिमालय के किसी अन्य भाग में। देश-विदेश के पर्यटकों में अभी तक यही धारणा चली आ रही है कि कश्मीर ही हिमालय का सबसे मनोरम भू-भाग है जिससे उसे 'धरती का स्वर्ग' कहा जाता है। सच तो यह है कि कश्मीर में हिमालय को नैसर्गिक सुषमा की अपेक्षा बाग-बगीचों, फव्वारों, हाऊस-बोटों आदि के रूप में मानवीय कला के समन्वय की झांकी अधिक आकर्षक दिखाई देती है और साथ ही यहाँ पर पयर्टकों की सुख-सुविधाओं की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है जिससे कश्मीर सैर-सपाटा, आमोद-प्रमोद तथा सैलानियों के लिए भले ही स्वर्ग हो, पर जो लोग हिमालय में आत्मा और परमात्मा, पुरुष और प्रकृति तथा शिव और शक्ति का दर्शन करना चाहते हैं उनके लिए तो उत्तराखंड से बढ़कर सुन्दर एवं प्रेरक क्षेत्र और कोई नहीं। अतः प्राचीन काल में आर्यों ने इसे तपोभूमि, देवभूमि तथा देवताओं की नाट्यशाला माना है। उत्तकाखंड में जहाँ एक ओर केदारनाथ, बद्रीनाथ, लोकपाल हेमकुंड, गंगोत्री, गोमुख, जमनोत्री, तुंगनाथ, रुद्र नाथ, त्रियुगी नारायण जैसे दिव्यस्थान विद्यमान हैं, वहां दूसरी ओर फूलों की घाटी,मसूरी, देहरादून, चकराता, हर की दून, रानीखेत, नैनीताल, अल्मोड़ा, पौड़ी, ऋषिकेश, लैंसडौन आदि पुष्पाच्छादित घाटियों में प्रकृति का शृंगार अवलोकनीय है।

यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में तीर्थयात्रा करना केवल धार्मिक कृत्यमात्र नहीं रह गया है फिर भी उत्तराखंड में फूलों की घाटी, केदार घाटी और कॉरवेट नेशनल पार्क का नैसर्गिक वैभव तो विश्व-विख्यात है। फूलों की घाटी व केदार घाटी का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। कॉरबेट नेशनल पार्क के हरित-शुभ्र पर्णावली में भ्रमण करते जानवरों का आनन्द लिया जा सकता है। यह वन्य पशु विहार हिमालय की तराई में लगभग ५२६ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ है जिसमें अब बाघ तो बहुत कम हैं परन्तु भालू, तेंदुए, लकड़बग्घे, हाथी, हिरण, चीतल, काक्कड़, मोर तथा यहाँ बहने वाली रामगंगा में मगरमच्छ भी पाए जाते हैं। इस वनस्थली का प्राकृतिक सौन्दर्य इतना मन-मोहक है कि पर्यटक दूर-दूर तक फैली घास की हरी पट्टी और काँस्य रंग के पेड़ों की कतार को देखता घण्टों नहीं अघाता। काठगोदाम और दिल्ली से रामनगर होते हुए इस पार्क का सड़क सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इसका नाम 'द मैन ईटर आफ कुमाऊँ' यानी कुमाऊँ का आदिमखोर के विख्यात लेखक तथा शिकारी जिम कॉरबेट के नाम पर रखा गया है।

प्राचीन परम्परानुसार हिमालय के समूचे क्षेत्र को नेपाल, कूर्मांचल (कुमाऊँ), केदार (गढ़वाल), जालंधर (हिमाचल) और कश्मीर नामक पाँच खंडों में विभक्त किया गया है। इनमें कूर्मांचल और केदार के मिले-जुले खंड को ही उत्तराखंड की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार कैलाश-मानसरोवर का क्षेत्र भी पहले-पहले उत्तराखंड में ही सम्मिलित था जो अब तिब्बत में है। इस अवस्था में देहरादून और जौनसार-बाबर का पहाड़ी इलाका केदार खंड का ही एक अंग था। अतएव उत्तराखंड के अन्तर्गत आजकल उत्तर प्रदेश के आठ जिले—टिहरी, उत्तरकाशी, चमोली, पौड़ी, नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ और

देहरादून आते हैं जिनका कुल क्षेत्रफल ३०,८२१ वर्ग किलोमीटर है। उत्तराखंड के इन आठ जिलों में उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ के तीन जिले सीमान्त जिले माने जाते हैं जिनकी लगभग पाँच सौ किलोमीटर लम्बी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तिब्वत से मिलती है और करीब उतनी ही लम्बाई में यह क्षेत्र नेपाल से मिला हुआ है। इसका अधिकाँश भाग हिमालय की मुख्य चोटियों तथा उसकी तलहटी से लगी हुई घाटियों व खाईयों से भरा पड़ा है जो विश्व के मानचित्र पर भारत और तिब्बत की सीमा-रेखा अंकित करता है। इसके पूर्व में काली (शारदा) नदी इसे नेपाल से अलग करती है और दक्षिण में इसकी तराई देहरादून और जौनसार-बाबर की संकीर्ण पट्टी उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्र को छूती है। पश्चिम में जाँगसील पर्वतमाला जहाँ इस क्षेत्र को हिमाचल से पृथक् करती है, वहाँ टोंस और उसकी सहायक नदियाँ इसकी पश्चिमी रेखा निर्धारित करती हैं।

सर जॉन स्ट्रेची ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इंडिया' में लिखा है—"गढ़वाल-कुमाऊँ हिमालय श्रेणी के पर्वतशिखरों में यद्यपि कोई उतना ऊँचा नहीं है जितना हिमालय-श्रेणी के दूसरे पर्वत-शिखर—यहाँ की केवल दो ही चोटियाँ पच्चीस हजार फुट से ऊँची हैं—किन्तु गढ़वाल-कुमाऊँ-हिमालय श्रेणी की औसत ऊँचाई सबसे बढ़कर है। दो सौ मील तक लगातार इसके कितने ही शिखर २२ हजार से २५ हजार फुट तक ऊँचे हैं।" इन शिखरों में नन्दादेवी, कामते, त्रिशूल, दूनागिरि, चौखम्भा, नीलकंठ, बंदरपूंछ, सतोपंथ, गंगोत्री, जमनोत्री, स्वर्गरोहिणी, श्रीकंठ, भारतखूंट, हरकीदून, नन्दाकोट, पिंडार, बद्रीनाथ, केदारनाथ, महापंथ, पंचचूलि आदि उल्लेखनीच हैं। इसके साथ ही, चार से छः हजार मीटर की ऊँचाई की बीच यहाँ पर अनेक ग्लेशियर व दर्रे हैं। यहाँ के प्रसिद्ध हिमनदों में गंगोत्री, नेलड़, केदारनाथ, कोसी, पिंडारी,

सतोपंथ, वैदिनी, नन्दादेवी, संकल्पा, तौतिंग के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं और थागला, त्संमचौकला, माणा, नीति, तुँजुम्ला, शैलशैल, बलचाधुरा, कियोगाड़, कुँग्री, विंग्री, धामा, लिपुलेख यहाँ के कतिपय महत्वपूर्ण दर्रे हैं। इस प्रकार जौनसार-बावर का कुछ मैदानी इलाका छोड़कर उत्तराखंड का समस्त भाग गर्वोन्नत शिखरों, ऊँची-नीची घाटियों, संकीर्ण खाईयों तथा पठारों से भरा पड़ा है। अतः उत्तराखंड के बारे में यहाँ की भाषा में दी गई संज्ञा 'ऊची डाँडयो नीसी घाटयो वाली धरती' यानी ऊँची चोटियों तथा नीची घाटियों वाली धरती अक्षरशः सत्य है।

हिमानी शिखरों से पिघली हुई बर्फ बारह महीने गंगा, यमुना तथा उसकी सहायक नदियों का शृंगार करती है। यहाँ पर आप कहीं भी जाइए, आपको हर घाटी में कोई-न-कोई जलधारा यत्र-तत्र बहती अवश्य ही दिखाई देगी। सच तो यह है कि हिमानी चोटियों और गहरी खाईयों की तरह कल-कल, छल-छल निनाद करती श्वेत, स्लेटी, हरे, नीले, श्मायल रंग की छोटी-बड़ी जितनी नदियाँ यहाँ पर देखने को मिलती हैं उतनी शायद ही हिमालय के किसी अन्य भाग में देखने को मिले। गंगा की सहायक नदियों व जलधाराओं की गिनती एक सौ से भी अधिक होगी जिन सब का यहाँ विवरण देना सम्भव नहीं। गंगा की तुलना में यमुना की सहायक नदियाँ बहुत कम हैं। परन्तु तमसा यमुना की एक सहायक नदी है जिसका उल्लेख कालिदास के 'रघुवंश' में मिलता है। इसके अनुसार बालमीकि ऋषि का आश्रम गंगा, यमुना और तमसा नदियों के क्षेत्र में था और यह संयोग उत्तराखंड में उत्तर-काशी के रवाई क्षेत्र को प्राप्त है जहाँ भागीरथी, यमुना और तमसा नदियाँ बहती हैं। यहाँ तमसा के निकट ही लूना नदी भी बहती है जो बाद में उसमें जा मिलती है। गंगा और यमुना की भाँति परम्परा में मालिनी का भी विशेष महत्व है जिसका

उल्लेख 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' में किया गया है। इसके अनुसार कण्व ऋषि का आश्रम इसके तट पर ही था। मालिनी रामगंगा की धारा के रूप में आज भी यहाँ पर प्रवाहित होती है जिसे स्थानीय लोग 'सौंतला धार' कहकर पुकारते हैं।

वास्तव में उत्तराखंड का क्षेत्र समूचे उत्तर प्रदेश का सबसे धनी क्षेत्र है। इसका अधिकाँश क्षेत्र ६०० से २,४०० मोटर की ऊँचाई तक है जो देवदार, चीड़ भोजपत्र, बाँज, बुरांस, खरसू, शाल, लून, संदन आदि वृक्षों से भरा पड़ा है। देवदार और चीड़ के हरित वन भागीरथी, यमुना, मन्दाकिनी, अलकनन्दा और पिंडार की उपत्यकाओं में कई किलोमीटरों तक फैले हुए हैं। देवदार व चीड़ की तरह यहाँ का अंगू पेड़ भी बड़ा उपयोगी होता है। इसकी हल्की व मजबूत लकड़ी से खेती के लिए हल और खेलों का सामान तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त विस्टोला और वैदनी के मखमली बुग्याल, म्यूडाँर घाटी का नन्दन कानन, रवाई की हरकीदून तथा कमल सिराई व रामा सिराई के दूर-दूर तक फैले हरे-भरे सौड़ तथा गोमुख से लेकर उत्तरकाशी तक का भागीरथी क्षेत्र अपनी धनो हरियाली में अद्वितीय है।

उत्तर प्रदेश का लगभग दो-तिहाई वनक्षेत्र उत्तराखंड में ही है जिससे राज्य को हर वर्ष करोड़ों रूपयों की आय होती है। वनों का यहाँ पर सुरक्षा, शुद्ध वायु तथा अधिक वर्षा के लिए इसकी उपयोगिता तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इससे भी अधिक इसका प्रयोग ईंधन, पशुओं के लिए चारा, खाद के लिए पत्तियाँ, खेती के औजारों के लिए लकड़ी, जंगली फल, चट्टाइयाँ व रस्सियाँ बनाने के लिए किया जाता है। साथ ही, यहाँ की घाटियों और पर्वतों में विचित्र प्रकार की जड़ी-बूटियाँ और वनौषधियों के भंडार हैं। इन औषधियों का वैज्ञानिक अनुसंधान न होने से अब तक इसका विशेष उपयोग नहीं हो पाया है। परन्तु

हाल ही में सरकार द्वारा स्थापित हरद्वार और रानीखेत के अनुसंधान केन्द्रों में इस दिशा में विशेष काम हो रहा है।

पर्यटकों का स्वर्ग

सचमुच, उत्तराखंड पर्यटकों का स्वर्ग है। इसका अधिकाँश भाग बड़ा ही मनोरम, स्वास्थ्यवर्द्धक तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से ओतप्रोत है। ख़ुशी की बात है कि यहाँ की लगभग सभी चोटियों पर अभियान हो चुके हैं। फिर भी पर्वतारोहण एक अलग चीज है और पहाड़ों पर पर्यटन दूसरी बात है। पर्वतारोही चुनौती की भावना लेकर पर्वतों पर चढ़ता है जबकि पर्यटक पहाड़ों के सौन्दर्य-रस का पान करने वहाँ जाता है। वह प्रकृति के विविध रंगों और रूपों में निखरता है और कुछ देर के लिए उसमें अपने को घुला-मिला देता है।

उत्तराखंड के देवरम्य नैसर्गिक वैभव से आकर्षित होकर देश-विदेश के पर्यटकों ने समय-समय पर अपने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। नन्दादेवी का 'सफल अभियान' के लेखक और विश्व-विख्यात पर्वतारोही डा० टी० जी० लाँग स्टाफ ने लिखा है—"छः बार हिमालय की यात्रा करने के पश्चात् मेरा विश्वास है कि समस्त एशिया में गढ़वाल सब से सौन्दर्यमय प्रदेश है। न तो यहाँ पर कारकोरम की पर्वत-श्रेणियोंजैसा जंगलीपन है और न ही ऐवरस्ट शिखर जैसा एकाँकीपन; न तो हिन्दूकुश की घाटियों में ऐसी सुषमा है और न ही हिमाचल का कोई अन्य भाग गढ़वाल की तुलना कर सकता है। पर्वत और घाटियाँ, जंगल और चोटियाँ, पशु और पक्षी, मधु मक्खियाँ और फूल सब मिलकर हर्ष और आनन्द का संचय करते हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता।"

वेस्टर्न तिब्बत एंड ब्रिटिश बौर्डरलैंड के लेखक शेरिंग के

शब्दों में—"टिहरी से लेकर अल्मोड़ा तक के इस प्रदेश में हिमशिखरों की ऐसी विलक्षण शृंखलाएँ हैं, जो संसार के किसी भाग में उपलब्ध नहीं।"

सेठ गोविन्द दास के विचार में—"मैं ने पृथ्वी की परिक्रमा की है परन्तु संसार में सर्वत्र घूमकर भी मुझे इतना आत्मिक सुख नहीं मिला जो हिमालय के उत्तराखंड की यात्रा में प्राप्त हुआ। हिमालय की वह नैसर्गिक सुषमा सचमुच अनुपम और अद्वितीय है।"

हिमालय के सुप्रसिद्ध पर्यटक राहुल साँकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'हिमालय परिचय' में लिखा है—"वस्तुतः गढ़वाल-हिमालय प्रकृति का रम्य क्रीड़ास्थल है। यहाँ के बर्फ से ढके ढाल पर्वत, दूर-दूर तक फैले पयार और बुग्याल, हरे-भरे चीड़, देवदार, बाँज और बाँस के सघन वन, उनकी छाया में बसे छोटे-छोटे गाँव, सीढ़ियों की भाँति उठते खेत, पर्वत की कटि से लिपटी-लुढ़कती सरिताएं और फूलों की हरी-भरी घाटियाँ—न जाने ये सब हिमालय के कितने विराट् सौन्दर्य को अपने में समेटे हैं जिनकी अनुभूति वहाँ के लोक-मानस को असंख्य रंगों से रँग देती है और उसकी वाणी को हृदय को छूने वाली रहस्यमय आत्मीयता की पुलक से भर देती है।"

महाप्रस्थानेर पथ के लेखक प्रबोधकुमार सान्याल की पूर्ण आस्था है—देवतात्मा हिमालय में सर्वाधिक प्रिय, सर्वाधिक पूज्य और सर्वाधिक वन-सुषमा-सम्पन्न भाग है—अविभक्त गढ़वाल! बहुकाल व्यापी विज्ञापन से कश्मीर को भूस्वर्ग कहा जाता है किन्तु दोनों आँखें खोलकर जिन्होंने कश्मीर और उत्तराखंड पर विचार किया है, वे जानते हैं उत्तराखंड में अनेक भूस्वर्ग बिखरे पड़े हैं। कश्मीर में हिमालय की देवतात्मा का स्वाद नहीं है।"

प्रकृति-प्रेमी पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' में

लिखा है—"कितना अचरज और हर्ष हुआ मुझे यह देखकर। बीच में आ जाने वाले जंगल से लदे पहाड़ों के ऊपर बड़ी दूरी पर, हिमालय की बर्फीली चोटियाँ चमक रही थीं। अतीत के सारे बुद्धि-वैभव को लिए, भारतवर्ष के विस्तृत मैदान के ये सन्तरी बड़े शान्त और रहस्यमय लगते थे। उनके देखने से मन में एक शाँति-सी छा जाती थी और उनकी सनातनता के आगे जनपदों और नगरों के हमारे छोटे-छोटे द्वेष और संघर्ष, विकार तथा प्रपंच अत्यन्त तुच्छ-से लगते थे।"

अतीत गौरव

उत्तराखंड जिस प्रकार अपने मनोरम सौन्दर्य के लिए देश-विदेश में विख्यात है, उसी तरह अतीत गौरव के लिए भी विशिष्ट एवं गौरवशाली रहा है। इसका इतिहास आर्यों के भारत में पर्दापण के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। फलतः वेदों, पुराणों, महाभारत, रामायण, गीता, शंकरभाष्य जैसे हमारे महान् ग्रन्थों की रचना यहीं पर हुई। कई विद्वानों के मतानुसार आर्यों का 'सप्तसैंधव' भी यही था जिसके अर्न्तगत गढ़वाल, कुमाऊँ, जौनसार-बाबर, मेरठ, अम्बाला, जालंधर, लाहौर, रावलपिंडी आदि क्षेत्र सम्मिलित थे। साथ ही, बाल्मीकि, वेदव्यास, वशिष्ठ, कण्व, कपिल, मार्कण्डेय, अगस्त्य, कश्यप, विश्वामित्र, भारद्वाज, भृगू आदि ऋषि-मुनियों की साधनास्थली एवं तपोभूमि होने का गौरव भी इसे प्राप्त है। इसके अतिरिक्त श्रीराम, श्रीकृष्ण, महात्मा गौतम, जगद् गुरु शंकराचार्य, गुरु गोविन्द सिंह, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी जैसी महान् विभूतियों को उत्तराखंड की देवभूमि ने आकृष्ट किया। अतएव महापंडित राहुल साँकृत्यायन ने लिखा

है—"मानसरोवर से लगा हिमालय का यह भाग भारत के लिए साँस्कृतिक, साँपत्तिक और प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।"

गढ़वाल और कुमाऊँ की भाँति देहरादून का जौनसार-बाबर परगना भी अपने प्राचीन गौरव के लिए समृद्ध रहा है। किसी समय इसके आसपास सिंहपुर, कालकूट, मायापुर, ब्रह्मपुर, कण्वाश्रम,बद्रिकाश्रम, गोविषाण, सुघ्न, लाखामंडल जैसी ऐश्वर्य-मयी बस्तियाँ विद्यमान थीं। इसकी जानकारी कालकूट(कालसी) के शिलालेख तथा बौदारखत के लाखा मंदिर के अभिलेख से मिलती है। इसके अतिरिक्त उत्तराखंड की पावनता एवं प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए पुराणों में भी प्रभूत सामग्री मिलती है।

ऐतिहासिक परम्परा

उत्तराखंड का पहला राजवंश कत्यूरी था जो तेरह पीढ़ियों तक रहा। इसका शासन काल ८वीं-९वीं शताब्दी की बीच का रहा है। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा धामदेव था जिसके समय में उसका राज्य विस्तार सिक्किम से लेकर काबुल तक था। इसकी पुष्टि हमें जोशीमठ और पाँडुकेश्वर में उपलब्ध प्राचीन ताम्रपत्रों और शिलालेखों से होती है। कत्यूरी शासन के पश्चात् यह क्षेत्र छोटे-छोटे राज्यों अथवा गढ़ों में बंट गया। गढ़वाल शब्द इसी का द्योतक है। केवल गढ़वाल मंडल में ही किसी समय ५२ राज्य थे। कत्यूरीवंश के बाद पँवारवंश के राजाओं ने राज्य किया जिनमें सुदर्शनशाह और फतेहशाह के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार कुमाऊँ में चन्दवंशी राजाओं ने राज्य किया

जिनका शासन काल १० वीं से १३ वीं शताब्दी के बीच का था। इस वंश का सबसे वीर और विद्वान राजा रुद्रचन्द्र था। परन्तु उसके पश्चात् धीरे-धीरे चन्दवंश राज्य का ह्रास होने लगा और कुमाऊँ का सारा राज्य एक बार फिर छोटे-छोटे राज्यों में छिन्न-भिन्न हो गया। इसके फलस्वरूप गोरखों ने सन् १,७९० ई० में कुमाऊँ को और सन् १,८०४ ई० में गढ़वाल के राजाओं को हराकर यहाँ पर कठोरता से शासन किया। इस नृशंसता की याद आज भी गढ़वाल और कुमाऊँ के लोग 'गोरख्यानी' के नाम से करते हैं। इस क्षेत्र को सन् १,८१५ ई० में फिर अंग्रेजी सेना की सहायता से मुक्त कराया गया जिससे कुमाऊँ, देहरादून जौनसर-बाबर तथा पौड़ी-गढ़वाल का सारा क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन रहा। उत्तराखंड के शेष भाग टिहरी-गढ़वाल पर पँवारवंश का ही शासन बना रहा। इस प्रकार देश की स्वाधीनता के साथ सन् १,९४७ में उत्तराखंड को विदेशी शासन से मुक्ति मिली।

निवासी और लोक-जीवन

उत्तराखंड के मूल निवासी किरात, नाग, गन्धर्व, यक्ष, खस, किन्नर आदि परिगणित जातियों के लोगों पर आर्यों के आगमन से गहरा प्रभाव पड़ा और एक नई संस्कृति का जन्म हुआ जिससे यहाँ जगह-जगह तीर्थों व आश्रमों की स्थापना हुई। किरात लोग कृषि की अपेक्षा आखेट, व्यापार आदि पर अधिक निर्भर करते थे। मारछा, तोलछा, जाड़, शाँका, जानहरिया आदि किरातों की कई जातियाँ आज भी माणा, नीति, नेलड़, बागौरी, बाँपा, मलारी, दरमा घाटी, काली उपत्यका आदि सीमान्त बस्तियों में रहती हैं और ये लोग वहाँ भोटिया के

नाम से प्रसिद्ध हैं। नाग संस्कृति के चिह्न यहाँ के अनेक नाग मंदिरों से स्पष्ट लक्षित होते हैं। नागराजा की पूजा कृष्ण भगवान् की उपासना के रूप में सर्वत्र की जाती है। इसी तरह खस, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि जाति के लोगों का उल्लेख भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में यत्र-तत्र देखने को मिलता है।

प्रकृति के प्राँगण में बसे उत्तराखंड के लोगों का जीवन बड़ा अनोखा और मानवता के गुणों से परिपूर्ण है। धार्मिक प्रवृत्ति के कारण ये लोग सच्चाई और ईमानदारी के ऊँचे आदर्शों पर चलते हैं तथा परस्पर स्नेह व अतिथियों के प्रति आदर-सत्कार की भावना इनमें कूट-कूट कर भरी है। इसके साथ ही, ये लोग बड़े भोले-भाले और संतोषी होते हैं, परन्तु धूम्रपान व मदिरापान जैसी बुरी आदतों से भी ये अछूते नहीं हैं। उद्योगों के अभाव में खेती-बाड़ी, पशु-पालन, मुर्गी-पालन, वनरोपण, बागवानी और मेहनत-मजदूरी करके यहाँ के लोग अपना तथा अपने बाल-बच्चों का पेट पालते हैं। इस काम के लिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक महत्व है। इस सम्बन्ध में हमें रामी का लोक-कथा याद हो आई जो इस प्रकार है—

रामी का पति सेना में एक सिपाही था। उसके पीछे खेती-बाड़ी का सारा काम-काज रामी ही करती थी। बहुत समय बीत गया। एक दिन अचानक रामी का पति अवकाश पर कुछ दिनों के लिए घर आया। रास्ते में उसे एक मज़ाक सूझा और जोगी के वेश में वह सीधा अपने खेत पर पहुँचा। वहाँ पर उसकी पत्नी जेठ की तपती दोपहरी में काम कर रही थी। यह देखकर जोगी मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी कृत्रिम सहानुभूति प्रकट करते हुए रामी से बोला—"आओ, थोड़ी देर गपशप करें।" पर रामी नहीं मानी और अपने काम में जुट गई। फिर वह फौजी जोगी वेश में ही अपने घर पहुँचा और अपनी माँ से

कुछ खाने के लिए कहा। अतएव सास ने बहु को घर बुलाया और रामी ने सास की आज्ञा का पालन कर तुरन्त ही भोजन तैयार कर दिया। बातों-ही-बातों में किसी तरह जोगी ने अपना वास्तविक रूप अपनो माँ को प्रकट कर रामी से उसके पति की थाली में ही खाने को कहा पर रामी नहीं मानी। इस पर सास ने बहु को एक-दो बार समझाने की चेष्ठा की, परन्तु फिर भी रामी नहीं मानी। तब फौजी हारकर रामी के सामने अपना जोगी का वेश उतारकर खड़ा हो गया। इस प्रकार एक लम्बे अर्से के पश्चात् रामी अपने पति को पाकर खुशी से फूली नहीं समाई और हर्ष के आँसू पोंछती हुई पति के पाँव पर जाकर गिर पड़ी।

श्रम से भरपूर और व्यस्त जीवन में भी यहाँ के लोग मनोरंजन के कुछ क्षण जुटा लेते हैं। मेले और उत्सवों पर तो मनोरंजन का कार्यक्रम प्रायः होता ही रहता है। शिखर हो या घाटी, खेत हो या खाल, बुग्याल हो या जंगल सर्वत्र लोक-गीतों की मधुर धुनें गूँजती सुनाई देती हैं। जाड़े की ठिठुरती रातों में आग जलाकर यहाँ के लोग प्राचीन जीवन की लोक-कथाओं को मंडाण के रूप में गाते हैं। कहीं पर हरूहीत और मालूसाई की कथा चलती तो कहीं पर गाँगी रमौली व रिखोला तथा कफ्फू चौहान के गीत गाए जाते हैं। यहाँ के लोक-गीत बड़े मधुर और सरस होते हैं जिनमें भड़ैला, झुमैला, माँगल, थड्या, चौक, चौफुला, जागर, घसियारी, चाँचरी, हुड़क्या, झौड़ा, छोलिया, लालुड़ी विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

बेटी के कन्यादान के समय गढ़वाल में गाए जाने वाले एक माँगल गीत का अंश देखिए—

"कुणजा दूबा का, कुणजा दूबा का बान दिलावा।
हल्दी केसर को रंग चढ़ावा ये॥"

यह गीत उस समय गाया जाता है जब वर को कुंज और दूब

की पूजा चढ़ाई जाती है और उसके बाद उसे केसर के सुगन्धित जल से स्नान कराया जाता है। इस शुभ अवसर पर बाजीगर ढोल-ढुमाकों की वधाई बजाकर सारे वातावरण को लोमहर्षक बना देते हैं।

ऊँचे-ऊँचे पर्वतों, सघन जंगलों और गहरी घाटियों के इस देश में बेटी अपने मायके को सुसराल से नहीं देख पाती और अपने मन के भावों को यों प्रकट करती है—

"ऊँचे-ऊँचे डाँड्यो नीसी ह्वै जावा,
घेंणि कुल्यायों छाँटि ह्वै जावा,
मीथें मैंति क देश देखण आवा।"

इसी तरह गढ़वाली बेटी माँ को कफू पक्षी से गीत सुनाने को कहती है जिससे उसे याद आ जाए कि जिसे अभी तक मायके नहीं भुलाया गया है, उसका मन आशा और निराशा में झूल रहा है—

"बास बास कफू भै झुमैलो, मेरा मैत्यों का चौक झुमैलो।
मेरा मैती सुणला, ऊँ खुद लगली झुमैलो।।"

कफू के मीठे-मीठे बोल सुनकर माँ मुझे बुलाने के लिए भाई को अवश्य ही भेजेगी। इस आशा सहित कुमाऊँ की बेटी यों कहती है—

"गैला मैला पातली न्यूलड़ी बासली
तू बासिए कफुवा मैती का देशा,
इजू सुणलि भै भेटोई लगाली।"

उत्तराखंड के मेलों व उत्सवों की भी अपनी विशेषता है। कुमाऊँ में अल्मोड़ा, रानीखेत और नैनीताल का नन्दाष्टमी मेला, बागेश्वर का उत्तराणी मेला, जोलजीवा का व्यापारिक मेला, द्वारहाट, मानिला तथा मासी में सोमनाथ का मेला, गिवाड़ में आठें का मेला, मिविया सैण में शिवरात्रि और बूड़ा

केदार में कार्तिक पूर्णिमा के मेले उल्लेखनीय हैं। गढ़वाल के मेलों में गिन्दी का मेला, पाँडुकेश्वर का मेला, उत्तरकाशी में मकर संक्रांति का मेला, अष्टमी को बामणी का मेला प्रसिद्ध हैं। इसी तरह जौनसार-बाबर में बिसु, माघ और मौण के मेले भी बड़े मशहूर हैं।

मेलों और उत्सवों पर यहाँ के पुरुष, स्त्रियाँ व बच्चे रंग-बिरंगे कपड़े पहनते हैं और विभिन्न प्रकार के पकवान बनाते हैं। आभूषणों में स्त्रियाँ नथ और चरेऊ (काले मोतियों की माला) को बड़ा महत्व देती हैं। मूँगों की माला तथा चाँदी के सिक्कों की माला का भी यहाँ बहुत प्रचलन है। इन अवसरों पर नृत्य व लोक-संगीत का भी आयोजन होता है। एक ओर गढ़वाल का पांडव नृत्य देखते ही बनता है तो दूसरी ओर कुमाऊँ में कत्यूरों की जागर भी दर्शनीय है। इस प्रकार ये मेले, उत्सव व त्यौहार उत्तराखंड के लोगों के लिए हर्ष, उल्लास व मनोरंजन के अवसर होते हैं। साथ ही, सुदूर से आने वाले लोगों के लिए व्यापार की दृष्टि से भी ये बड़े उपयोगी होते हैं।

उत्तराखंड में मुख्य रूप से गढ़वाली, कुमाऊँनी ओर जौनसारी भाषाएँ बोली जाती हैं। देहरादून के निवासी अधिकतर गढ़वाली मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करते हैं। परन्तु यही जौनसार-बाबर परगने के लोग जौनसारी बोलते हैं जो गढ़वाली और कुमाऊँनी से काफी भिन्न है जबकि गढ़वाली और कुमाऊँनी में पर्याप्त समानता है।

प्रगति के पथ पर

"हमारे पर्वतीय प्रदेश दुनिया में सबसे सुन्दर हैं। मैं चाहती हूँ कि यहाँ के लोगों के जीवन में भी हम सुन्दरता ला सकें।"

यह शब्द एक बार हमारे वर्तमान प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने उत्तराखंड की यात्रा से लौटने पर कहे थे।

वस्तुतः यहाँ के लोगों की सबसे बड़ी समस्या उदरपूर्ति है जिसके लिए ये लोग इतने चिन्ताग्रस्त रहते हैं कि प्रकृति के मध्य में होकर भी, मानो ये प्रकृति से कोसो-किलोमीटरों दूर हों। स्वाधीनता के बाद देश के अन्य भागों की भाँति यहाँ पहाड़ों पर नई खेती, बागवानी, लघु उद्योग के विकास तथा नई-नई सड़कों के निर्माण पर ध्यान दिया जा रहा है। यहाँ जगह-जगह पर्यटकों की सुख-सुविधा हेतु भी नए-नए डाकबंगलों, होटलों व शैडों का निर्माण हो रहा है जो अभी भी अपेक्षित है। इस कमी को पूरा करने के लिए पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में विशेष रूप से ध्यान दिया गया है जिससे यहाँ की पहाड़ी निर्धन जनता के लिए नियोजन के कुछ अवसर बढ़ जाएंगे। साथ ही, यहाँ पर गर्म चादरें व कम्बल बुनना, चीड़ की लकड़ी से तारपीन और बिरोजा निकालना, जड़ी-बूटियों से औषधियाँ तैयार करना, नदियों से बिजली व सिंचाई की योजनाएं चालू करना, दियासलाई का निर्माण तथा छोटे-छोटे पैमाने पर किए जाने वाले उद्योगों का विकास भी हो रहा है। उत्तराखंड के देवरम्य सौन्दर्य के कारण इसे कश्मीर व हिमाचल की अपेक्षा पर्यटन उद्योग में अधिक बढ़ावा मिलना चाहिए। जिस वर्ष जिस किसी पर्वतस्थली पर जितने अधिक पर्यटक एवं सैलानी पहुँचते हैं, उस वर्ष उतनी ही सुविधा से वहाँ के लोग अपना तथा अपने बाल-बच्चों का पेट पालते हैं। सच पूछा जाए तो इनकी कमाई पर्यटकों एवं रईसों की अधिक संख्या में आने पर निर्भर करती है। वे लोग सौगात के रूप में यहाँ के लोगों की चीजों को मोल लेकर ही अपने प्रदेशों को लौटते हैं। पर्यटकों के कम आने पर इन चीजों की माँग भी कम रहती है। □□

परिशिष्ट--१

१	**ऋषिकेष—केदारनाथ**	२२६ कि० मी०
	ऋषिकेष से गौरीकुंड सड़क मार्ग	२१२ ,,
	गौरीकुँड से केदारनाथ पैदल मार्ग	१४ ,,
२	**ऋषिकेष—बद्रीनाथ**	२९८ ,,
३	**ऋषिकेष—नन्दन कानन**	२८९ ,,
	ऋषिकेश से गोविन्द घाट सड़क मार्ग	२७० ,,
	गोविन्द घाट से नन्दन कानन पैदल मार्ग	१९ ,,
	गोविन्द घाट से हेमकुँड पैदल मार्ग	१८ ,,
४	**ऋषिकेष—गंगोत्री**	२४८ ,,
	लंका से भैरों घाटी पैदल मार्ग	२३ ,,
५	**ऋषिकेष—जमनोत्री**	२२० ,,
	ऋषिकेष से स्यान चट्टी मोटर मार्ग	२०२ ,,
	स्यान चट्टी से जमनोत्री पैदल मार्ग	१८ ,,
६	**अल्मोड़ा—पिन्डारी ग्लेशियर**	२०१ ,,
	अल्मोड़ा से बराड़ी सड़क मार्ग	१४८ ,,
	बराड़ी से पिन्डारी ग्लेशियर पैदल मार्ग	५३ ,,
७	**कोटद्वार—श्रीनगर**	१२३ ,,

परिशिष्ट—२

१. शिखर—

नन्दादेवी, कामेत, त्रिशूल, दूनगिरि, चौखम्भा, नीलकंठ, बंदर-पूँछ, सतोपंथ, गंगोत्री, जमनोत्री, स्वर्गारोहिणी, श्रीकंठ, भारत-खूंट, हरकीदून, नन्दाकोट, पिंडार, बद्रीनाथ, केदारनाथ, महापंथ, पंचचूलि।

२. ग्लेशियर—

गंगोत्री, नेलड़, केदारनाथ, कोसी, पिंडार, सतोपंथ, वैदिनी, नन्दादेवी, संकल्पा, तौतिंग, रतवन, म्यूँडार, मिलाम।

३. दर्रे—

थागला, त्संगचौकला, माणा, नीति, तुंजुम्ला, बल्चाधुरा, कियोगाढ़, कुंग्री, बिंग्री, धामा, लिपुलेख, अन्ताखल, शैलशैल।

४. सरोवर—

देवताल, दिउरीताल, रुपकुंड, चुरबारी ताल, बासुकी ताल, नैनीताल, भीमताल, खुरपाताल, नौकुचिया ताल, सातताल, नल दमयन्ती ताल, विरही ताल, सतोपंथ, लोकपाल हेमकुंड।

५. नदियां—

गंगा, यमुना, अलकनन्दा, भागीरथी, मन्दाकिनी जाह्नवी, भिलंगना, मालिनी, रामगंगा, पिंडार, नयार, सरस्वती, धौली गंगा, नन्दाकिनी, बासुकी गंगा, मधु गंगा, क्षीर गंगा, केदार गंगा, हेम गंगा, स्वर्गरोहिणी, टोंस (तमसा), काली, कोसी, गौला, बाल गंगा, जलकूर, रुपिन, सुपिन, ऋषि गंगा।